चौथी दुनिया

www.chauthiduniya.com

हिंदी का पहला साप्ताहिक अख़बार

1986 से प्रकाशित | 22 मई– 28 मई 2017 | नई दिल्ली | हर शुक्रवार को प्रकाशित | Postal Regn. No. DL (ND)-11/6139/2015-17, RNI No. DELHIN/2009/30467

अडानी का धंधा

भारत में ख़ामोशी ऑस्ट्रेलिया में तूफ़ान

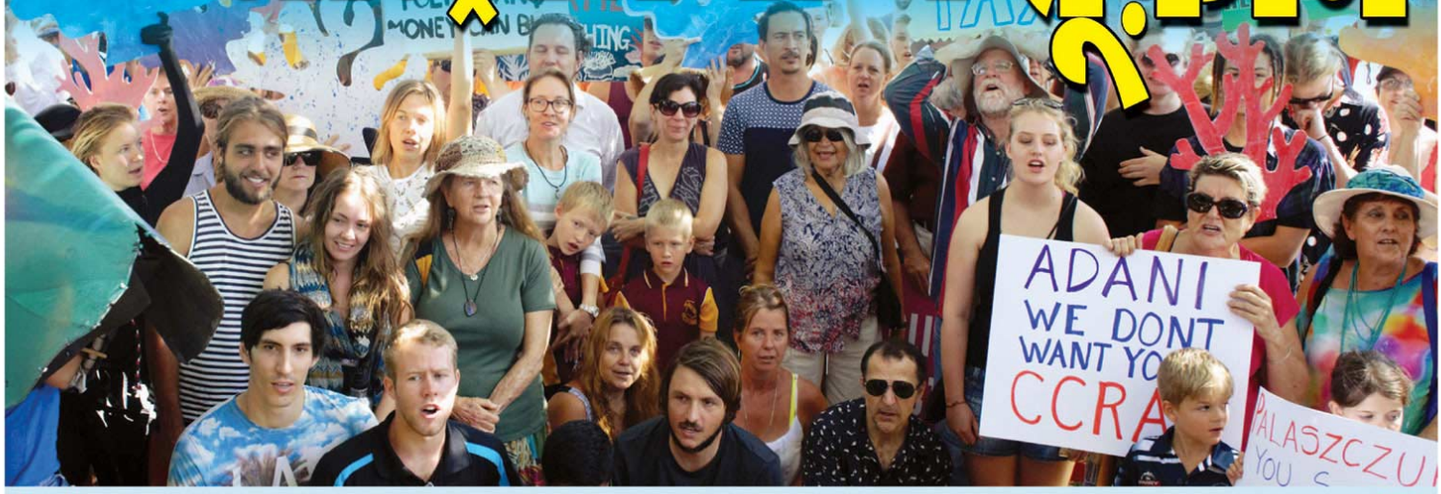

जिस तरह देश में कुछ ख़ास पूंजी घरानों का मकड़जाल फैलता जा रहा है, उससे साफ-साफ लगता है कि सत्ता और व्यवस्था की चाभी अडानी और अम्बानी जैसे पूंजीपतियों के पास है. अडानी के खिलाफ ऑस्ट्रेलिया में हंगामा मचा हुआ है, जिसका एक अंश भी भारत का मीडिया भारत के लोगों को नहीं बता रहा है. जबकि एक ऑस्ट्रेलियाई नागरिक संसाधनों की लूट और जन-उत्पीड़न के भारत के साक्ष्य को ऑस्ट्रेलिया में पेश कर वहां भारी जन-समर्थन जुटा चुका है. अडानी ने तो भारत के मुंद्रा में पर्यावरण को तहस-नहस कर प्रोजेक्ट भी स्थापित कर लिया. कोयला खनन के अडानी के गोरखधंधे देश में विख्यात हैं ही. उन्होंने ऑस्ट्रेलिया के क्वींसलैंड में भी कोयला खनन का ठेका लिया और इसके लिए वहां के सागर तट की सुंदर प्रवाल-श्रृंखला को ध्वस्त करने की भी तैयारी कर ली है. इसके खिलाफ क्वींसलैंड के एक चरवाहे ने बीड़ा उठाया और आज पूरा ऑस्ट्रेलिया अडानी की हरकतों के खिलाफ खड़ा हो गया है.

शफीक आलम

एक ऑस्ट्रेलियाई चरवाहे (रैंचर) को अपने चारागाह के नष्ट होने, खेतों के ख़राब होने, भूजल के प्रदूषित होने और सबसे बढ़कर ऑस्ट्रेलिया के महत्वपूर्ण पर्यटक आकर्षण प्रवाल श्रृंखला (कोरल रीफ) की तबाही के डर ने इतना परेशान किया कि वो एक बड़ी कोयला खनन कम्पनी के सामने अकेला सीना ठोक कर खड़ा हो गया. अपने मवेशियों और अपने कारोबार को अपने बेटे के हवाले कर उसने भारत का दौरा किया. वो खुद अपनी आंखों से देखकर ऑस्ट्रेलिया के लोगों को बताना चाहता था कि जिस भारतीय कंपनी को उसके चारागाह के आस-पास कोयला खनन का ठेका दिया गया है, उसने भारत में अपनी परियोजनाओं और कार्यक्रमों से कैसे तबाही मचा रखी है और पर्यावरण को किस तरह से नुकसान पहुंचा रही है. ऑस्ट्रेलिया के इस चरवाहे का नाम ब्रूस करीं है, जो क्वींसलैंड प्रांत का निवासी है. जिस भारतीय कम्पनी को ऑस्ट्रेलिया में खनन का ठेका मिला है, वो है विख्यात अडानी समूह और उसके मालिक का नाम है गौतम अडानी. अडानी पूंजी घराने से प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की नजदीकियां जगजाहिर हैं.

अडानी समूह के 22 अरब डॉलर के कारमाइकल कोयला खनन परियोजना के खिलाफ करीं ने जब अपना आंदोलन शुरू किया था, तब उनके समर्थन में उस समय बहुत कम लोग खड़े थे, लेकिन धीरे-धीरे समर्थकों की संख्या बढ़ने लगी. जिस दिन क्वींसलैंड की सरकार ने इस परियोजना को हरी झंडी दिखाई, उसी दिन करीं ने भारत आने का फैसला किया. अडानी ग्रुप द्वारा गुजरात में चल रही परियोजनाओं के दौरान पर्यावरण और दूसरे मानकों के उल्लंघन की रिपोर्ट करीं ने जब लोगों तक पहुंचाई, तो उनके समर्थन में क्रिकेटर, आर्टिस्ट, लेखक, राजनेता और यहां तक कि उद्योगपतियों सहित ऑस्ट्रेलिया की कई मशहूर हस्तियां खड़ी हो गईं. प्रांतीय सरकार ने अडानी ग्रुप को कोल माइनिंग के साथ-साथ भूजल के इस्तेमाल की भी असीमित छूट दे रखी है. करीं द्वारा शुरू किया गया आंदोलन मुख्य रूप से इसी भूजल को प्रदूषित होने से बचाने पर केंद्रित है. अपनी रिपोर्ट में करीं कहते हैं कि भारत में पड़ताल के दौरान उन्हें अच्छी तरह से इसका अंदाज़ा लग गया कि अडानी वहां पर कितने प्रभावी और शक्तिशाली हैं. वहां ये साफ-साफ देखा जा सकता है कि अपने प्रभाव का इस्तेमाल करके उन्होंने कैसे फायदा उठाया है. अब हम वहीं सब ऑस्ट्रेलिया में भी देख रहे हैं. अडानी ग्रुप का प्रभाव क्वींसलैंड के लेबर्स, स्थानीय मेयर्स सभी पर है.

गौरतलब है कि करीं भूजल संरक्षण के लिए लम्बे समय से लड़ाई लड़ रहे हैं. दरअसल, ज़मीन का पानी उनके चारागाह और उससे जुड़े कारोबार के लिए बहुत ही ज़रूरी है. इसीलिए राज्य सरकार द्वारा अडानी की परियोजना को हरी झंडी दिए जाने के बाद भी उन्होंने अपनी लड़ाई जारी रखी. अपनी लड़ाई को और आगे बढ़ाने के लिए उन्होंने अपने देश की संसद, अदालत और संबद्ध संस्थाओं के दरवाज़ों पर दस्तक दी. उसी क्रम में वे एक फैक्ट फाइंडिंग मिशन पर भारत भी आए.

ज़ाहिर है जिन तथ्यों का करीं ने अपनी रिपोर्ट में ज़िक्र किया है, वे भारत के हैं. ऐसा नहीं है कि भारत में इस तरफ किसी का ध्यान नहीं गया है. खुद भारत सरकार के पर्यावरण मंत्रालय ने अडानी एंटरप्राइजेज पर पर्यावरण के नियमों के उल्लंघन के मामलों में 200 करोड़ रुपए या प्रोजेक्ट की कुल लागत का एक प्रतिशत जुर्माना लगाया था. गौर करने वाली बात ये है कि जिन तथ्यों की बुनियाद पर करीं अपने देश में जन समर्थन जुटा रहे हैं, उन्हीं तथ्यों को लेकर भारत के नागरिक समाज में कोई बेचैनी या कोई रोष दिखता प्रतीत नहीं हो रहा है. कुछ पर्यावरणविद और एनजीओ को छोड़ दिया जाए, तो ऐसा लगता है कि प्रभावित किसानों से किसी का कोई लेना देना नहीं है. सरकारें तो विकास के नाम पर दबे कुचलों की सुनने को तैयार ही नहीं हैं, उनका सारा ध्यान उद्योगपतियों के हित को साधने में लगा हुआ है. विपक्ष भी खामोश है. जो एनजीओ ऐसे मामलों में सवाल उठाते हैं, उनके खिलाफ भी विगत कुछ वर्षों से ऐसा माहौल तैयार किया जा रहा है जैसे वे विकास के दुश्मन हैं या फिर देश के दुश्मन हैं. ऐसे में विकास के नाम पर हो रही धांधली देख कर करीं का विचलित हो जाना स्वाभाविक लगता है.

करीं की रिपोर्ट के कुछ अहम बिन्दु

1. मुंद्रा और हज़ीरा के किसानों और मछुआरों को नौकरियां देने और स्थानीय अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देने के वादे खोखले साबित हुए.
2. अडानी समूह ने भूजल प्रदूषित किया, अवैध रूप से जमीन पर कब्जा किया और मैंग्रोव जंगलों को तबाह किया.
3. अडानी के बंदरगाह के निर्माण के बाद हजीरा के मछुआरों के मछली पकड़ने की संख्या में 90 फीसदी तक कम आई है. मछुआरों की ये भी शिकायत थी कि अब उनकी मछलियों से बदबू आती है और उनका स्वाद पहले जैसा नहीं है.
4. मुंद्रा में खजूर की खेती करने वाले एक किसान ने बताया कि अडानी बिजली संयंत्र से उठने वाले कोयले की धूल के कारण उसकी पूरे 10 एकड़ की फसल ख़राब हो गई. कपास और अरंडी तेल की उसकी फसलों को भी काफी नुकसान पहुंचा है.
5. जल संसाधनों में अवरोध उत्पन्न किया गया.
6. अडानी की कोयला परियोजनाओं के नज़दीक रहने वाले लोगों की जिंदगी बेहतर होने की बजाय और मुश्किल हो गई है.
7. कई लोगों की पारम्परिक आजीविका के साधन नष्ट हो गए. कुछ लोगों को मजबूरन अदालत का दरवाज़ा खटखटाना पड़ा और कुछ मजबूरन पलायन भी कर गए.

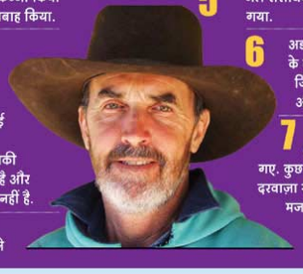

स्रोत : नार्थ क्वींसलैंड रजिस्टर

मुंद्रा में शर्तों का उल्लंघन और अडानी पर जुर्माना

अडानी एंटरप्राइजेज द्वारा मुंद्रा में विकसित किए जा रहे बंदरगाह और विशेष आर्थिक क्षेत्र परियोजना (एसईजेड) द्वारा पर्यावरणीय मानदंडों के उल्लंघन मामले की जांच के लिए तत्कालीन यूपीए सरकार के पर्यावरण मंत्रालय ने एक समिति गठित की थी. पर्यावरणविद् सुनीता नारायण की अध्यक्षता वाली इस पांच सदस्यीय समिति ने पर्यावरण और वन राज्य मंत्रालय को दी गई अपनी रिपोर्ट में कहा था कि अडानी वाटरफ्रंट और पावर प्लांट परियोजना में पर्यावरणीय शर्तों की अनदेखी की गई थी. इस समिति ने आरोपों की जांच के लिए रिमोट सेंसिंग की तकनीक का इस्तेमाल किया था और पाया कि पिछले एक दशक में बोचा द्वीप के 75 हेक्टेयर क्षारीय जंगलों को नष्ट कर दिया गया है. ये एक संरक्षित क्षेत्र था. रिमोट सेंसिंग की तस्वीरों में ये भी पाया गया कि निर्माण गतिविधियों के कारण प्रस्तावित उत्तर पोर्ट के पास के क्रीक और घाटियों को नुकसान पहुंचा है. कंपनी ने उड़ने वाले राख के निपटारे, समुद्री जल के आउटलेट और निर्वहन के कारण होने वाले जल प्रदूषण में वृद्धि को रोकने के लिए कुछ नहीं किया. समिति ने ये भी पाया कि इस परियोजना की मंजूरी को तोड़ने-मरोड़ने की कोशिश की गई. साथ ही कई तरह के बहाने बनाकर जन सुनवाई की प्रक्रिया का अनुपालन नहीं किया गया. जबकि जन सुनवाई इस परियोजना की मंजूरी का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है. इससे स्थानीय लोगों की समस्याओं को समझने और उन्हें दूर करने में मदद मिलती है. रिपोर्ट में ये भी कहा गया था कि इससे परियोजना के लिए हुए भूमि अधिग्रहण और निर्माण कार्यों से हुए बदलावों से सबसे ज्यादा वे मछुवारे प्रभावित हुए, जो अपनी आजीविका के लिए समुद्र तट पर निर्भर हैं. सुधारात्मक उपाय के तौर पर पर्यावरण के पुनर्स्थापन के लिए समिति ने कंपनी पर परियोजना की लागत का 1 प्रतिशत या 200 करोड़ रुपए का जुर्माना लगाया. इसका उपयोग पर्यावरण को हुए नुकसान की भरपाई करने और निगरानी प्रणाली को मजबूत करने के लिए किया जाना था. इस क्षेत्र के नाजुक पारिस्थितिकी संतुलन को संरक्षित रखने के लिए प्रस्तावित उत्तरी पोर्ट को पूर्ण रूप से रद्द करने की भी सिफारिश की गई थी. साथ ही क्षारीय जंगलों को संरक्षित करने, लवणापन से निपटने और तटीय क्षेत्र को प्रभावित करने वाली आपदाओं से निपटने के लिए कदम उठाने की बात भी कही गई थी. उस समय समिति ने एक महत्वपूर्ण बात ये कही थी कि यदि परियोजना की शर्तों के अनुपालन पर जोर दिया गया होता और उसकी निगरानी ठीक ढंग से की गई होती, तो फिर किसी समिति को जांच करने और रिपोर्ट पेश करने की आवश्यकता ही नहीं होती.

बहरहाल, हाल में ये ख़बर आई कि मौजूदा सरकार ने अडानी एंटरप्राइजेज पर लगे 200 करोड़ रुपए के जुर्माने को माफ़ कर दिया है. हालांकि बाद में (शेष पृष्ठ 2 पर)

मोदी-मुण्डा मुलाकात कहीं सत्ता परिवर्तन के संकेत तो नहीं | P-3

क्या किसानों की ज़मीन वापस मिलेगी | P-5

लालू के दिल्ली कूच को झटके पर झटका | P-6

भारत में ख़ामोशी ऑस्ट्रेलिया में तूफ़ान

पृष्ठ 1 का शेष

सरकार ने इस रिपोर्ट का खंडन किया और कहा कि पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने कंपनी की जिम्मेदारियों को बढ़ा दिया है, जिसके अनुसार अब राशि की कोई सीमा नहीं होगी. अब सवाल ये उठता है कि जो कंपनी खुले तौर पर परियोजना की शर्तों का उल्लंघन करती रही, वो एक गैर निर्धारित राशि कैसे खर्च करेगी? यदि विपक्ष और पर्यावरण से जुड़े लोग 200 करोड़ रुपए के जुर्माने की बात करते हैं, तो सरकार को इसे जारी रखने में क्या मजबूरी है? यदि कंपनी की जिम्मेदारियों को बढ़ाना ही था, तो 200 करोड़ की राशि में और इज़ाफ़ा किया जा सकता था और एक निश्चित राशि की बात की गई होती.

सरकार अपने पसंदीदा कॉर्पोरेट्स की हिमायत करती है

विपक्ष और राजनीतिक विश्लेषकों की तरफ से अक्सर ये आरोप लगता है कि मोदी सरकार अपने पसंदीदा पूंजीपतियों को फायदा पहुंचाने की कोशिश करती रही है. इस सिलसिले में जिन उद्योगपतियों का नाम लिया जाता है, उनमें अडानी और अम्बानी के नाम महत्वपूर्ण हैं. भले ही सरकार और मीडिया का एक बड़ा वर्ग इस तथ्य को झुठलाए, लेकिन ये सच्चाई है कि अपने कार्यकाल के शुरुआती दौर में जब मोदी लगातार विदेश दौरे कर रहे थे, तब आम तौर पर उन दौरों में अडानी ज़रूर शामिल रहे. उस दौरान अडानी ग्रुप को कई प्रोजेक्ट भी मिले, जिनमें क्वींसलैंड का विवादित कोल माइनिंग प्रोजेक्ट भी शामिल था. इस प्रोजेक्ट के सम्बंध में सबसे महत्वपूर्ण बात ये रही कि शुरुआत से ही इसके विवादों में रहने के बावजूद स्टेट बैंक ऑफ इंडिया ने इसके लिए कथित तौर पर एक अरब डॉलर का ऋण आवंटित किया. सवाल ये उठता है कि कोई बैंक किसी कंपनी को इतना बड़ा क़र्ज़ बिना किसी सरकारी दबाव के कैसे दे सकता है, वो भी ऐसे समय में जब बैंकों को उनके नॉन परफॉर्मिंग एसेट्स (एनपीए) ने परेशान कर रखा है? हालांकि सूत्रों के हवाले से ये खबर आई थी कि एसबीआई ने अडानी को क़र्ज़ आवंटित करने से इंकार कर दिया है. लेकिन फिर एक आरटीआई के जवाब में जब ये पूछा गया कि बैंक ने अडानी समूह को कितना ऋण आवंटित किया है, तो बैंक ने इस सम्बंध में जानकारी देने से मना कर दिया. इस परियोजना का अब तक विवादों से पीछा नही छूटा है. ऑस्ट्रेलिया में लोग इसका भारी विरोध कर रहे हैं. ऑस्ट्रेलिया के प्रबुद्ध लोगों के एक समूह ने अडानी को पत्र लिख कर इस परियोजना से अपना हाथ वापस खींच लेने की अपील की है. इस मामले में वहां लोगों का संघर्ष सड़क से लेकर संसद तक और संसद से अदालत तक जारी है.

ज़ाहिर है, स्पेशल इकोनोमिक जोन में हुई पर्यावरण के मानकों की खुली अनदेखी महज़ इत्तेफाक नहीं हो सकती है.

जब तक किसी उद्योगपति को राजनीतिक शह नहीं मिलता, तब तक वो खुलेआम ऐसा नहीं कर सकता है. सरकार से उनकी नज़दीकी का अंदाजा 200 करोड़ रुपए के जुर्माने की माफी से भी लगाया जा सकता है. दरअसल, प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और गौतम अडानी की नजदीकियां किसी से ढकी-छिपी नहीं हैं. दोनों का साथ बहुत पुराना है और ये रिश्ता एकतरफा भी नहीं है. 2002 के गुजरात दंगों के बाद जब नरेन्द्र मोदी चारो तरफ से घिरे हुए थे और खुद तत्कालीन प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने उन्हें राजधर्म निभाने का निर्देश दिया था, तब लगभग सभी पूंजीपतियों ने उनसे किनारा कर लिया था. ऐसे समय में अडानी ही अकेले उनके साथ खड़े थे. उन्होंने मोदी के लिए उद्योग जगत से लोहा लिया. जब कॉन्फ्रेडरेशन ऑफ़ इंडियन इंडस्ट्री (सीआईआई) ने गुजरात दंगों के लिए मोदी की आलोचना की, तो अडानी ने कुछ स्थानीय व्यापार समूहों के साथ मिलकर रिसर्जेंट ग्रुप ऑफ़ गुजरात नाम की संस्था बनाई और सीआईआई छोड़ने की धमकी दे डाली थी. उसी तरह जब 2013 में वार्टन बिजनेस स्कूल ने मोदी का नाम कीनोट स्पीकर से हटा दिया, तो उसके विरोध में अडानी ने अपनी फंडिंग वापस ले ली थी. अडानी उस कांफ्रेंस के मुख्य प्रायोजकों में से एक थे. ये भी कहा जाता है कि 2014 के मोदी के चुनाव अभियान को अडानी ने दिल खोल कर समर्थन दिया था. मोदी अपने चुनाव प्रचार के दौरान अडानी के निजी जेट का इस्तेमाल करते देखे गए और चुनाव जीतने के बाद भी वे अडानी के निजी विमान से ही दिल्ली आए थे. अडानी की इसी पृष्ठभूमि की वजह से उनके आलोचक उनपर सवाल उठाते हैं और हर उस परियोजना को शक की निगाह से देखा जाता हैं, जिसमें अडानी ग्रुप शामिल है.

अडानी के बारे में कहा जाता है कि वे न केवल भारत के सबसे अमीर लोगों में से एक हैं, न सिर्फ भारत के सबसे बड़े निजी बंदरगाह को संचालित करते हैं और न सिर्फ भारत के सबसे बड़े निजी बिजली उत्पादक हैं, बल्कि देश के सर्वाधिक शक्तिशाली और राजनैतिक रसूख वाले व्यक्तियों में से भी एक हैं. ये राजनीतिक रसूख उन्हें उनकी प्रधानमंत्री से नजदीकी की वजह से मिलती है. बहुत से लोगों का मानना है कि पर्यावरण की क्षति को लेकर यूपीए सरकार द्वारा लगाए गए 200 करोड़ रुपए के जुर्माने की माफ़ी हो या छत्तीसगढ़ में आदिवासियों के अधिकारों के उल्लंघन के बाद भी धड़ल्ले से चल रहे माइनिंग प्रोजेक्ट की, सब मोदी से अडानी की नजदीकियों के कारण ही हो रहा है. चौथी दुनिया ने पूर्व में एक रिपोर्ट प्रकाशित की थी, जिसमें मौजूदा सरकार के दो मंत्रालयों के बीच वन अधिकार को कमज़ोर करने सम्बंधी मुद्दे पर विचारों के आदान-प्रदान को दिखाया गया था. चौथी दुनिया ने ही एक और रिपोर्ट प्रकाशित की थी, जो वन अधिकार कानून के कार्यान्वयन पर देश के एनजीओ के एक समूह द्वारा तैयार रिपोर्ट पर आधारित थी. इस रिपोर्ट में बताया गया था कि अब तक वन अधिकार कानून का महज 10 प्रतिशत कार्यान्वयन ही हो पाया है. तब ये भी सवाल उठा कि नरेन्द्र मोदी प्रो-बिज़नेस हैं या प्रो-अडानी/अम्बानी? मोदी जब गुजरात के मुख्यमंत्री थे, तब अडानी को एसईजेड के लिए देश भर में सबसे सस्ते दर पर ज़मीन आवंटित की गई. ये ज़मीन उन्हें 1 रुपए से 32 रुपए प्रति वर्ग मीटर के हिसाब से दी गई थी. जबकि नैनो यूनिट के लिए टाटा मोटर्स को अहमदाबाद के नज़दीक 1100 रुपए प्रति वर्ग मीटर के हिसाब से ज़मीन दी गई. वहीं हंसलपुर में मारुती सुजुकी को 670 रुपए प्रति वर्ग मीटर के हिसाब से ज़मीन दी गई. सस्ती ज़मीन के साथ-साथ अडानी को गैर कृषि योग्य ज़मीन दी गई, इसलिए अधिग्रहण के दौरान विरोध का सामना नहीं करना पड़ा. मोदी के मुख्यमंत्रित्व काल के दौरान ही कैग ने अडानी को लाभ पहुंचाने के लिए गुजरात सरकार की संस्था गुजरात स्टेट पेट्रोलियम कॉरपोरेशन (जीएसपीसी) की खिंचाई की थी. कैग रिपोर्ट में कहा गया था कि जीएसपीसी ने तात्कालिक बाजार भाव पर प्राकृतिक गैस खरीदी और अडानी को निर्धारित मूल्य पर बेच दिया, जो बाज़ार भाव से बहुत कम था. इस मामले में अडानी को 70 करोड़ रुपए का फायदा पहुंचाया गया. हालांकि जीएसपीसी ने एस्सार स्टील को भी 12.2 करोड़ रुपए का लाभ पहुंचाया था. लेकिन यहां एक बार फिर मोदी और अडानी के निकट संबंधों की वजह से इस मामले को संदेह की नज़र से देखा गया.

अडानी बड़े या अम्बानी

जब नीरा राडिया का टेप लीक हुआ था, तो उसमें अटल बिहारी वाजपायी के दामाद रंजन भट्टाचार्य को ये कहते सुना गया था कि मुकेश अम्बानी ने उनसे कहा था, कांग्रेस अब अपनी दुकान है. अम्बानी और अडानी में अंतर सिर्फ इतना है कि मोदी के आने से पहले भी अम्बानी राष्ट्रीय परिदृश्य पर मौजूद थे और मोदी के आने के बाद भी मौजूद रहे, जबकि अडानी इससे पहले बहुत हद तक गुजरात तक ही सीमित थे. अम्बानी के कांग्रेस के साथ भी अच्छे सम्बंध थे और भाजपा के साथ भी अच्छे सम्बंध हैं, जबकि अडानी के बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता है. क्योंकि कांग्रेस के कार्यकाल में ही अडानी के ऊपर मुंद्रा पोर्ट और एसईजेड के विकास के दौरान पर्यावरण के मानकों के उल्लंघन का दोषी मानते हुए 200 करोड़ रुपए का जुर्माना लगाया गया था. लेकिन मोदी के सत्ता में आने के बाद अडानी राष्ट्रीय परिदृश्य पर नज़र आने लगे. हालांकि अम्बानी और अडानी दोनों ही मोदी के विदेशी दौरों पर अक्सर उनके साथ रहे हैं. दोनों का सम्बंध गुजरात से है. लेकिन मोदी से नजदीकी के मामले में यदि दोनों में से किसी एक का चुनाव करना पड़े, तो निश्चित रूप से वो अडानी ही होंगे.

अम्बानी और अडानी में अंतर सिर्फ इतना है कि मोदी के आने से पहले भी अम्बानी राष्ट्रीय परिदृश्य पर मौजूद थे और मोदी के आने के बाद भी मौजूद रहे, जबकि अडानी इससे पहले बहुत हद तक गुजरात तक ही सीमित थे. अम्बानी के कांग्रेस के साथ भी अच्छे सम्बंध थे और भाजपा के साथ भी अच्छे सम्बंध हैं, जबकि अडानी के बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता है. क्योंकि कांग्रेस के कार्यकाल में ही अडानी के ऊपर मुंद्रा पोर्ट और एसईजेड के विकास के दौरान पर्यावरण के मानकों के उल्लंघन का दोषी मानते हुए 200 करोड़ रुपए का जुर्माना लगाया गया था.

मीडिया में अम्बानी का हित

कॉर्पोरेट सेक्टर ने अपने हित साधने के लिए मीडिया पर क़ब्ज़ा जमाना शुरू कर दिया है. मुकेश अम्बानी ने देश के सबसे बड़े टीवी नेटवर्क, नेटवर्क-18 को खरीद कर मीडिया पर क़ब्ज़े की ओर अपना क़दम बढ़ा दिया है. नेटवर्क-18 के अलावा वे केबल टीवी पर भी नज़र रखे हुए हैं और अब टीवी सेट पर क़ब्ज़ा ज़माने के लिए 2 अरब डॉलर की राशि खर्च करने की योजना बना रहे हैं. ऐसे दौर में, जब न्यूज़ चैनल और अखबार सत्ताधारी दल का मुखपत्र बन गए हैं, बिज़नेस हाउसेज को लगता है कि मीडिया उनके लिए भी एक माहौल तैयार कर सकता है. मिसाल के तौर पर, ये धारणा देश में घर कर गई है और साक्ष्य भी उसी ओर इशारा करते हैं कि अडानी और अम्बानी पर मोदी सरकार की खास नज़र-ए-इनायत है. हालांकि इंटरनेट और संचार के दूसरे माध्यमों में बड़ी संख्या में ऐसी खबरें पढ़ने और देखने को मिल जाएंगी, जिनमें ये कह कर मोदी से अम्बानी और अडानी की नजदीकियों को ख़ारिज किया जा रहा है कि मोदी के कार्यकाल में इन दोनों कंपनियों को काफी नुकसान हुआ है. इसलिए मोदी किसी तरह से इनकी तरफदारी नहीं कर रहे हैं.

लेकिन मीडिया ये बताना भूल जाता है कि देश का प्रधानमंत्री किसी प्राइवेट कंपनी के प्राइवेट प्रोडक्ट के विज्ञापन में कैसे आ सकता है. मामला जियो मोबाइल का है. जियो के विज्ञापन में प्रधानमंत्री की तस्वीर देश के हर बड़े अखबार में छपी थी. इसके जवाब में मुकेश अम्बानी ने कहा था कि मोदी जी सबके प्रधानमंत्री हैं, इसलिए उनकी तस्वीर को विज्ञापन में शामिल करने में कोई बुराई नहीं है. लेकिन इस सिलसिले में जो सबसे हास्यास्पद खबर आई, वो ये थी कि प्रधानमंत्री का फोटो बिना इजाज़त विज्ञापन में छापने पर 500 रुपए का जुर्माना लग सकता है. देश के सबसे अमीर व्यक्ति पर ये कैसा जुर्माना है? अब यही काम जो चाहे वो अपने प्रोडक्ट के प्रचार के लिए कर सकता है, क्योंकि केवल 500 रुपए के जुर्माने के साथ उसे इतना बड़ा ब्रांड एम्बेसडर मिल जाएगा. जियो से ही जुड़ा एक दूसरा मामला है, जो बहुत ही संवेदनशील है. ये मामला है आधार कार्ड का. जब सुप्रीम कोर्ट ने आधार कार्ड की अनिवार्यता पर स्टे लगा रखा था, तो देश के नागरिकों ने अपनी व्यक्तिगत पहचान को एक प्राइवेट कंपनी के हवाले कैसे कर दिया? उसके फ़ौरन बाद ये खबर आई कि 13 करोड़ लोगों का आधार डाटा लीक हो गया है. अब जबकि आधार की सुरक्षा व्यवस्था ठीक नहीं है, तो किसी प्राइवेट कंपनी को इसके इस्तेमाल की इजाज़त कैसे दे दी गई!

एक और मामला रिलायंस द्वारा ओएनजीसी की संसाधन चोरी का है. कैग ने अपनी रिपोर्ट में केजी-डी6 बेसिन में 2011 से 2014 के मध्य 9,307.22 करोड़ रुपए मूल्य की गैस निकासी का अंदाज़ा लगाया था. लेकिन देश के प्राकृतिक संसाधन की इस लूट में कैग की रिपोर्ट आने के बाद भी सरकार केवल इसलिए खामोश है, क्योंकि इसमें मुकेश अम्बानी का नाम शामिल है. मीडिया भी खामोश है और देश का विपक्ष भी खामोश है. जो लोग आवाज़ उठा रहे हैं, उनकी आवाज़ में इतनी गूंज नहीं है कि वो देश के नीति-निर्माताओं की कानों तक पहुंच सके. चाहे वो सत्ताधारी दल हों या विपक्षी, सब पर कॉर्पोरेट चंदे का दबाव इतना अधिक है कि जनता के दुःख दर्द की बजाय उन्हें बड़ी कंपनियों के हितों की रक्षा करना ज्यादा ज़रूरी लगता है. एक और सवाल खड़ा होता है कि क्या सरकार से नजदीकी रखने वाले पूंजीपतियों के खिलाफ उठने वाली आवाज़ों का दम घुट गया है? अडानी समूह जैसी शक्तिशाली कंपनी के खिलाफ ऑस्ट्रेलिया से भारत आकर कोई व्यक्ति अपने हितों की रक्षा के लिए साक्ष्य जुटा सकता है, तो भारत में भारतीयों के हितों की रक्षा के लिए आवाजें क्यों नहीं उठ रही हैं? क्या अब लोकतंत्र की परिभाषा ये हो गई है कि लोकतंत्र जनता की, जनता द्वारा चुनी हुई उस सरकार को कहते हैं, जो अपने पसंदीदा कॉर्पोरेट्स के लिए काम करती है और इनके लिए अच्छे दिन का मतलब अपने पसंदीदा कॉर्पोरेट्स के अच्छे दिनों से है? ■

चौथी दुनिया
हिंदी का पहला साप्ताहिक अखबार

वर्ष 09 अंक 12
22 मई- 28 मई 2017

RNI-DELHIN/2009/30467

संपादक
संतोष भारतीय

एडिटर (इंवेस्टिगेशन)
प्रभात रंजन दीन

सहायक संपादक
सरोज कुमार सिंह (बिहार-झारखंड)
सरयू भवन, वेस्ट बोरिंग केनाल रोड,
हरीलाल स्वीट्स के निकट, पटना-800001
फोन: 0612 3211869, 09431421901

मैसर्स अंकुश पब्लिकेशंस प्राइवेट लिमिटेड के लिए मुद्रक व प्रकाशक रामपाल सिंह भदौरिया द्वारा जागरण प्रकाशन लिमिटेड डी 210-211 सेक्टर 63 नोएडा उत्तर प्रदेश से मुद्रित एवं के- 2, गैनन, चौधरी बिल्डिंग, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली 110001 से प्रकाशित

संपादकीय कार्यालय
के-2, गैनन, चौधरी बिल्डिंग कनॉट प्लेस, नई दिल्ली 110001
कैंप कार्यालय एफ-2, सेक्टर -11, नोएडा, गौतमबुद्ध नगर उत्तर प्रदेश-201301

फोन न.
संपादकीय 0120-6451999, 6450888
विज्ञापन व प्रसार 022-65500786, +91-8451050786, +91-9266627379
फैक्स न. 0120-2544378

पृष्ठ-16++ (बिहार-झारखंड, उत्तर प्रदेश-उत्तराखंड)

चौथी दुनिया में छपे सभी लेख अथवा सामग्री पर चौथी दुनिया का कॉपीराइट है. बिना अनुमति के किसी लेख अथवा सामग्री के पुनः प्रकाशन पर क़ानूनी कार्रवाई की जाएगी.

समस्त कानूनी विवादों का क्षेत्राधिकार दिल्ली न्यायालयों के अधीन होगा.

मोदी-मुंडा मुलाक़ात कहीं सत्ता परिवर्तन का संकेत तो नहीं

अर्जुन मुंडा की इस मुलाकात ने मुख्यमंत्री रघुवर दास की नींद उड़ा दी. मुख्यमंत्री भी दिल्ली रवाना हुए, पर उनकी प्रधानमंत्री से मुलाकात नहीं हो सकी. उन्हें पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष अमित शाह और कुछ दिग्गज नेताओं से मुलाकात कर ही संतोष करना पड़ा. झारखंड में भाजपा को पहली बार बहुमत मिला और यहां बहुमत की सरकार बनी, पर श्री दास भाजपा विधायकों के साथ ही गठबंधन वाले दलों के विधायकों का विश्वास जीतने में असफल रहे हैं, इसलिए अभी तक पूर्ण मंत्रिमंडल नहीं बन सका. राज्यपाल ने इस पर ऐतराज जताया था और विधि विशेषज्ञों ने भी इस अपूर्ण मंत्रिमंडल को असंवैधानिक बताया था, पर बारहवें मंत्री की नियुक्ति अभी तक नहीं हो सकी. बहुमत में आने के बाद भी रघुवर दास को अपने विधायकों पर विश्वास नहीं है, इसी कारण उन्हें दूसरे पार्टी को तोड़ अपनी पार्टी में शामिल करा उन्हें मंत्रिपरिषद में मलाईदार विभाग देना पड़ा.

प्रशान्त शरण

झारखंड के पूर्व मुख्यमंत्री अर्जुन मुंडा की प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के साथ मुलाकात क्या हुई, झारखंड का सियासी पारा गरमा गया. इस मुलाकात के अलग-अलग मायने निकाले जाने लगे. राजनीतिक शतरंज की बिसातें बिछनी शुरू हो गईं और शह-मात की बातें होने लगीं. आखिर इस तरह की बातें उठनी भी लाजिमी है, क्योंकि यह मुलाकात तब हुई, जब लिट्टिपाड़ा विधानसभा उपचुनाव का परिणाम आया. मुख्यमंत्री रघुवर दास द्वारा पूरी ताकत झोंक देने के बाद भी चुनाव हार जाने की घटना ने भाजपा के आला नेताओं को सोचने पर मजबूर कर दिया. भाजपा नेताओं को यह अहसास होने लगा कि आदिवासी बहुल राज्य में पार्टी के कद्दावर नेता एवं पूर्व मुख्यमंत्री अर्जुन मुंडा को दरकिनार कर नहीं चला जा सकता. 2019 में लोकसभा चुनाव को देखते हुए प्रधानमंत्री ने अर्जुन मुंडा को बुलावा भेजा. मुंडा उस समय धनबाद दौरे पर थे. अपने सभी कार्यक्रम छोड़ मुंडा जब दिल्ली पहुंचे, तो प्रधानमंत्री मोदी ने उनका गर्मजोशी से स्वागत करते हुए एक घंटे तक बातचीत की. इस दौरान वे झारखंड की ताजा राजनीतिक स्थिति से भी अवगत हुए. भाजपा के शीर्ष नेताओं का कहना है कि मुख्यमंत्री रघुवर दास की प्रधानमंत्री के साथ इतनी लंबी मुलाकात कभी नहीं हुई. इस मुलाकात के बाद यह कयास लगाया जाने लगा कि अब सत्ता परिवर्तन की तैयारी शुरू हो चुकी है. इस मुलाकात ने मुख्यमंत्री रघुवर दास को यह संकेत दिया है कि वे झारखंड में संभलकर सियासत करें.

अर्जुन मुंडा की इस मुलाकात ने मुख्यमंत्री रघुवर दास की नींद उड़ा दी. मुख्यमंत्री भी दिल्ली रवाना हुए, पर उनकी प्रधानमंत्री से मुलाकात नहीं हो सकी. उन्हें पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष अमित शाह और कुछ दिग्गज नेताओं से मुलाकात कर ही संतोष करना पड़ा. झारखंड में भाजपा को पहली बार बहुमत मिला और यहां बहुमत की सरकार बनी, पर श्री दास भाजपा विधायकों के साथ ही गठबंधन वाले दलों के विधायकों का विश्वास जीतने में असफल रहे हैं, इसलिए अभी तक पूर्ण मंत्रिमंडल नहीं बन सका. राज्यपाल ने इस पर ऐतराज जताया था और विधि विशेषज्ञों ने भी इस अपूर्ण मंत्रिमंडल को असंवैधानिक बताया था, पर बारहवें मंत्री की नियुक्ति अभी तक नहीं हो सकी. बहुमत में आने के बाद भी रघुवर दास को अपने विधायकों पर विश्वास नहीं है, इसी कारण उन्हें दूसरे पार्टी को तोड़ अपनी पार्टी में शामिल करा उन्हें मंत्रिपरिषद में मलाईदार विभाग देना पड़ा. आपात स्थिति में बाहर से समर्थन लेने के लिए वे झामुमो सुप्रीमो शिबू सोरेन का भी बार-बार आशीर्वाद लेते रहे. मुख्यमंत्री के कार्यकलाप और उनके रूखे व्यवहार से अधिकतर भाजपाई नाराज हैं. विकास की बातों को वे बढ़ा-चढ़ाकर भले पेश करें, पर जमीनी हकीकत कुछ और है. रघुवर के कार्यकाल में भाजपा का जनाधार घटा है और राजनीतिक गलियारे में यह चर्चा आम है कि अगर रघुवर दास पांच वर्षों तक सत्ता में रहे तो अगले विधानसभा चुनाव में भाजपा को दहाई का आंकड़ा पार करने में पसीना छूट जाएगा.

इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि मोदी मुंडा मुलाकात सत्ता परिवर्तन के ही संकेत हैं. झारखंड में आदिवासी और महतो मतदाताओं की बहुलता है और इन दोनों समुदाय के मतदाता रघुवर दास की स्थानीय नीति और सीएनटी एसपीटी में संशोधन के फैसले से नाराज चल रहे हैं. इन मुद्दों को लेकर राज्य में कई बार हिंसात्मक आंदोलन भी हो चुके हैं. पूर्व मुख्यमंत्री अर्जुन मुंडा सहित अधिकतर आदिवासी विधायक रघुवर के इस फैसले से नाराज हैं, एक तरह से कहा जाए तो मुण्डा रघुवर विरोधियों का नेतृत्व कर रहे हैं. भाजपा के अधिकतर आदिवासी विधायक मुंडा के साथ हैं, साथ ही आदिवासी एवं महतो मतदाताओं पर मुंडा की पकड़ अच्छी है. मुंडा की पहचान एक कद्दावर नेता के रूप में है. वे किसी भी सरकार को गिराने और बनाने का दम-खम रखते हैं. कुछ सरकारों को गिराने में इन्होंने अहम भूमिका भी निभाई थी, जबकि झारखंड राजनीति के चाणक्य माने जाने वाले सरयू राय भी रघुवर दास से खासे नाराज चल रहे हैं और मुंडा को इनका साथ मिलना तय है. मार्च 2003 में बाबुलाल की सरकार इन्हीं दोनों नेताओं ने मिलकर गिरा दी थी, उस समय मुंडा को राजनाथ सिंह का पूरा साथ मिला था. इस बार भी उसी तरह की पृष्ठभूमि तैयार हो रही है. प्रधानमंत्री का आशीर्वाद मिलते ही फिर वे राजनीति में सक्रिय हो गए हैं और उनकी नजर एक बार फिर सत्ता के शीर्ष पर टिक गई है. गौरतलब है कि मुंडा और रघुवर का छत्तीस का आंकड़ा है और इन दोनों के बीच शह और मात का खेल भी चलता रहता है. इस बार मुंडा फिर भारी दिखाई पड़ रहे हैं, वैसे यह तय माना जा रहा है कि अर्जुन मुंडा को मुख्यमंत्री का ताज नहीं मिलेगा, पर इन्हीं के पसंद का व्यक्ति मुख्यमंत्री की कुर्सी पर बैठेगा, यह तय माना जा रहा है. इसमें राज्य के पूर्व आईएएस अधिकारी एवं भाजपा के प्रवक्ता जेबी तुबिद का नाम सबसे ऊपर है.

दरअसल लिट्टीपाड़ा विधानसभा उपचुनाव में रघुवर दास ने अर्जुन मुंडा को कोई तरजीह नहीं दी थी. स्टार प्रचारक के रूप में भी मुंडा का नाम नहीं था, जबकि भाजपा प्रत्याशी हेमलाल मुर्मू को मुंडा ही झामुमो से भाजपा में लेकर आए थे. मुख्यमंत्री दास को यह मालूम था कि मुंडा की पकड़ इस क्षेत्र में अच्छी है, फिर भी उन्होंने उनका दौरा नहीं कराया. दरअसल रघुवर को यह अहसास था कि अगर वे यह चुनाव जीत जाएंगे, तो झारखंड में उनका कद सबसे बड़ा हो जाएगा और इसी गलतफहमी ने उन्हें कहीं का नहीं रखा. रघुवर दास द्वारा अर्जुन मुंडा को तरजीह नहीं दिए जाने से पार्टी आलाकमान भी नाखुश है. ऐसे में झारखंड की चुनावी नैया पार कराने की जिम्मेदारी मुंडा पर थोपने का मन पार्टी आलाकमान बना चुकी है. दरअसल, पिछले महीने ओडीशा में पंचायत चुनाव के परिणाम से प्रधानमंत्री काफी उत्साहित हैं, इसकी वजह है कि ओडीशा में आदिवासियों की संख्या अच्छी-खासी है, जहां अर्जुन मुंडा का जादू चला और पंचायत चुनाव में कामयाबी मिली. लेकिन मुंडा झारखंड में अपने को पूरी तरह से उपेक्षित महसूस कर रहे थे. पार्टी आलाकमान आने वाले ओडीशा विधानसभा चुनाव में मुंडा का पूरा सहयोग लेने को आतुर है और इस बात का संकेत प्रधानमंत्री स्वयं अर्जुन मुंडा को दे चुके हैं. आलाकमान ने उनसे झारखंड से सटे ओडीशा विधानसभा क्षेत्रों में पूरी ताकत झोंक देने को कहा है. झारखंड में आदिवासियों के बीच पार्टी की पकड़ मजबूत करने की बात भी प्रधानमंत्री ने की है. प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी का ध्यान आने वाले लोकसभा चुनाव पर भी है.

2014 लोकसभा चुनाव में भाजपा को 14 में से 12 सीटें मिली थी और मुंडा ने इसमें अहम् भूमिका निभाई थी. रघुवर दास के मुख्यमंत्री बनते ही वे अचानक पर्दे से गायब हो गए. अब देखना है कि झारखंड में पार्टी अपनी साख बचाने के लिए किस पर दांव लगाती है, वैसे लगातार गिर रहे जनाधार से भाजपा आलाकमान चिंतित है. वह आने वाले चुनाव में एक ऐसा चेहरा पार्टी के सामने लाना चाहती है, जिसकी पकड़ आदिवासियों पर मजबूत हो, क्योंकि भाजपा को यह विश्वास है कि सवर्ण और वैश्य मतदाता तो उनके परम्परागत वोटर हैं, पर जरूरत है आदिवासी और महतो मतदाताओं को गोलबंद करने की. अर्जुन मुंडा सबसे शक्तिशाली आदिवासी नेता के रूप में जाने जाते हैं और ऐसे में पार्टी मुंडा को ही आगे कर चुनाव लड़ सकती है. इससे अब इंकार नहीं किया जा सकता है. ■

झारखंड में आदिवासियों की अनदेखी नहीं की जा सकती : मुंडा

राज्य के पूर्व मुख्यमंत्री अर्जुन मुण्डा की प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के साथ हुई मुलाकात ने झारखण्ड का सियासी पारा चढ़ा दिया है. विधानसभा चुनाव में अपनी हार के बाद मुण्डा झारखण्ड राजनीति में अलग-थलग पड़ गए थे, पर अचानक ढाई वर्षों के बाद इस मुलाकात से शह-मात का खेल शुरू हो गया है. पर्दे के पीछे से रघुवर विरोधियों ने सरकार गिराने और बनाने की तैयारी शुरू कर दी है. वैसे मुण्डा इसे सियासी मुलाकात नहीं, बल्कि शिष्टाचार भेंट बताते हैं, पर सियासी गलियारों में इस मुलाकात के कई मायने निकाले जा रहे हैं.

इधर पूर्व मुख्यमंत्री अर्जुन मुण्डा का यह मानना है कि आदिवासियों और मूलवासियों की लंबे समय तक अनदेखी नहीं की जा सकती है. रघुवर सरकार ने सीएनटी और एसपीटी में जो संशोधन लाया है, उसमें इस सरकार को सुधार करना चाहिए. स्थानीय नीति से यहां के लोग खासे नाराज है, खासकर एसएनटी में हुए संशोधन से आदिवासी समुदाय में बहुत आक्रोश है. आदिवासी समुदाय की अनदेखी पार्टी हित में नहीं है. मुख्यमंत्री को इसे प्रतिष्ठा का विषय नहीं बनाना चाहिए और इस संशोधन पर पुनर्विचार किया जाना चाहिए.

प्रधानमंत्री से अचानक भेंट के मायने पर कुछ भी बताने से इंकार करते हुए वे कहते हैं कि कोई सियासत की बात नहीं, यह मात्र शिष्टाचारवश मुलाकात थी. इतनी लंबी अवधि के बाद इस मुलाकात के पीछे कोई राज है, इस पर वे कुछ भी नहीं बोलते और इस सवाल को टालने की कोशिश करते हैं. इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि इस मुलाकात के पीछे कई राज छिपे हैं, इस मुलाकात ने कई राजनेताओं के चेहरे की मुस्कान छीन ली है. ■

मुस्कान ग़ायब हो गई है रघुवर दास की

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी और पूर्व मुख्यमंत्री अर्जुन मुंडा की मुलाकात ने मुख्यमंत्री रघुवर दास की नींद और मुस्कान दोनों छीन ली है. यह मुलाकात उस समय हुई, जब लिट्टिपाड़ा विधानसभा उपचुनाव में भाजपा की करारी हार हुई. राजनीति के गलियारों में यह चर्चा जोरों पर है कि उपचुनाव में मिली हार से भाजपा नेतृत्व मुख्यमंत्री दास से नाराज है. वहीं यह भी चर्चा है कि पहाड़िया जनजाति बटालियन के जवानों को प्रधानमंत्री के हाथों ढोवारा नियुक्ति-पत्र बंटवाने की बात को प्रधानमंत्री कार्यालय ने गंभीरता से लिया है और राज्य सरकार से इस संबंध में पूछताछ भी की है. बहुमत की सरकार होने के बाद भी ढाई वर्षों तक बारहवें मंत्री की नियुक्ति नहीं होने पर भी भाजपा नेतृत्व ने मुख्यमंत्री से नाराजगी जाहिर की है. मुख्यमंत्री रघुवर दास भी भाजपा के विरोधी खेमों द्वारा रचे गए चक्रव्यूह में फंसते दिख रहे हैं, उन्हें भी यह अहसास होने लगा है कि अब वे ज्यादा दिनों के मेहमान नहीं हैं, उनकी कुर्सी छिन जाने का खतरा मंडराने लगा है. वैसे तो अपने को गंभीर दिखाने की कोशिश में मुख्यमंत्री दास के चेहरे पर मुस्कान शायद ही कभी आती है, पर दोनों की मुलाकात ने सचमुच उनके चेहरे का रंग उड़ा दिया है. पूर्व मुख्यमंत्री मुंडा की जिस दिन प्रधानमंत्री के साथ मुलाकात हुई, उस दिन ही आनन-फानन में रघुवर दास भी नई दिल्ली पहुंच गए और पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष अमित शाह से मुलाकात कर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया. मुख्यमंत्री की बैचेनी का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि अमित शाह से मुलाकात के बाद जब वे रांची लौटे, तब कार्यों में तेजी लाने के लिए विभागीय समीक्षा बैठक कर नए-नए फैसले लेने शुरू कर दिए. इसमें उन्होंने आधी आबादी को खुश करने के लिए कोई भी प्रॉपर्टी खरीदने पर निबंधन शुल्क माफ करने की घोषणा की. तूफानी समीक्षा बैठक में उन्होंने अधिकारियों को भी हड़काया और काम नहीं करने वाले अधिकारियों को बाहर का रास्ता दिखाने की बात भी कह डाली. ये सभी बातें उनके अंदर की बैचेनी को दिखाने के लिए काफी हैं.

वैसे मुख्यमंत्री दास का यह मानना है कि जितना काम उन्होंने ढाई साल में किया, उतना किसी के शासनकाल में नहीं हुआ. उनके काम से पार्टी के आला नेता खुश हैं. वैसे इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि मुख्यमंत्री के दो फैसले सीएनटी एसपीटी एक्ट और स्थानीय नीति के कारण झारखंड में भाजपा की छीछालेदर हो रही है और इन फैसलों से भाजपा की साख गिरी है. ■

बिलक़िस और निर्भया केस अलग-अलग कैसे?

एयू आसिफ

आज समाज के विभिन्न वर्गों में न्यायपालिका के द्वारा न्याय को लेकर सवाल पूछा जा रहा है कि आखिर बिलकिस बानो और निर्भया के मामले में अंतर क्यों रखा गया? दोनों के मामले सामूहिक बलात्कार के थे. बिलकिस बानो के मामले में 5 मई को बंबई हाई कोर्ट ने ट्रायल कोर्ट के द्वारा ग्यारह लोगों को सुनाई गई उम्रक़ैद की सज़ा को बरक़रार रखा. जबकि निर्भया के मामले में दूसरे दिन 5 मई को सुप्रीम कोर्ट ने दोषियों की ओर से सज़ा में कमी की अपील को खारिज करते हुए ट्रायल कोर्ट और दिल्ली हाईकोर्ट द्वारा सुनाई गई फांसी की सज़ा पर मुहर लगा दी. सुप्रीम कोर्ट का कहना है कि दोषियों ने न केवल सामाजिक विश्वास का गला घोटा है, बल्कि बर्बरता की तमाम सीमाएं लांघ दी. न्यायालय के अनुसार ये गंभीर अपराध था, जो रेयरेस्ट ऑफ दि रेयर मामला है.

गौरतलब है कि बिलकिस बानो का मामला 3 मार्च 2002 का है, जो गुजरात दंगों के दौरान हुआ था. इसमें बिलकिस बानो की मौत नहीं हुई थी, लेकिन जिस समय उसके साथ सामूहिक बलात्कार हुआ, उस समय वो 5 माह की गर्भवती थी. उसकी तीन वर्ष की मासूम बच्ची समेत उसके परिवार के 14 लोगों की हत्या कर दी गई थी. बिलकिस बानो को मुर्दा जानकर निर्वस्त्र छोड़ दिया गया था. यहां ये सवाल उठना स्वाभाविक है कि इस निर्मम घटना ने समाज को उस प्रकार क्यों नहीं झकझोरा, झिंझोड़ा, हिलाया जैसे निर्भया के मामले में देखा गया. निर्भया वाली घटना 16 दिसंबर 2012 की है, जिसमें उसकी मौत हो गई थी. जिस प्रकार से दोषियों ने निर्भया को मौत के मुहाने पर ला दिया था, ताकि वो ज़िंदा न बच सके, उसी प्रकार बिलकिस बानो को भी मारने में कोई कसर नहीं छोड़ी गई थी, लेकिन वो बच गई. निर्भया को इंसाफ़ दिलाने के लिए प्रशासन, पुलिस और डॉक्टरों के साथ-साथ पूरे देश की जनता थी और सभी ने दोषियों को कड़ी से कड़ी सज़ा दिलाने के लिए अपने-अपने स्तर पर कोशिशें कीं. लेकिन बिलकिस बानो के मामले में ऐसा बिल्कुल नहीं हुआ. डॉक्टरों और पुलिस ने उसकी मदद नहीं की. उल्टे उसकी ग़लत रिपोर्ट बना दी गई और उसके सबूतों के साथ छेड़छाड़ भी हुई. दोनों मामलों की गहराई में जाएं, तो पता चलता है कि निर्भया का मुक़दमा लड़ने में पीड़ितों को उतनी परेशानी नहीं हुई जितनी बिलकिस बानो को हुई. जब तक मुक़दमे का निर्णय नहीं आया, उसने छिपते-छिपाते एक एनजीओ की मदद से अपना जीवन गुज़ारा. सुप्रीम कोर्ट के हस्तक्षेप के बाद उसका मामला सीबीआई को सौंपा गया और तब मुक़दमा गुजरात से महाराष्ट्र भेजा गया. ज़ाहिर सी बात है कि जब दोनों ही मामले में अपराध और अपराधियों का मक़सद एक था, दोनों मामलों में एक ही क़ानून था, तो फिर सज़ा में अंतर खटकना स्वाभाविक है. निर्भया मामले में सुप्रीम कोर्ट का निर्णय आते ही बिलकिस बानो के निर्णय पर सवाल उठने लगे और न्याय के दोहरे पैमाने की बात उठाई जाने लगी. सबसे पहले कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया (मार्क्सिस्ट) की पोलित ब्यूरो सदस्य वृंदा कारत ने न्यायपालिका के दोहरे मापदंड पर सवाल उठाया. वृंदा करात ने कहा कि मैं सैद्धांतिक रूप से सजा-ए-मौत के खिलाफ़ हूं, लेकिन ये ऐसा गंभीर और घिनौना अपराध था, जिसमें कड़ी से कड़ी सज़ा की आवश्यकता थी. जो कुछ बिलकिस बानो के मामले में हुआ, वो हम सबके सामने है. सुप्रीम कोर्ट के पूर्व जज मार्कंडेय काटजू ने चौथी दुनिया से बात करते हुए कहा कि बिलकिस बानो का मुक़दमा रेयरेस्ट ऑफ दि रेयर की श्रेणी में आता है और इस मामले में भी अपराधियों को सजा-ए-मौत मिलनी चाहिए. राष्ट्रपति प्रणाब मुखर्जी की बेटी और कांग्रेस नेता शर्मिष्ठा मुखर्जी का ट्वीट भी इस संदर्भ में उल्लेखनीय है. अपने ट्वीट में उन्होंने लिखा है कि आखिरकार निर्भया के मुकदमे में न्याय हो गया, लेकिन बिलकिस बानो के बारे में क्या कहा जाय? हमलोगों को उन शैतानों को कड़ी से कड़ी सज़ा दिलाने के लिए क़ानून लड़ाई लड़नी चाहिए, जिन्होंने ये सामूहिक बलात्कार किया और उसकी बच्ची हत्या की. मशहूर वकील रेबिका जॉन ने कहा कि मैं सजा-ए-मौत का समर्थन नहीं करती हूं, लेकिन उसे एक उदाहरण के रूप में ये कहने के लिए इस्तेमाल कर रही हूं कि जब सजा-ए-मौत का समय आता है, तो न्यायपालिका के पास समान मापदंड नहीं होते हैं. एआईएमआईएम के अध्यक्ष असदुद्दीन औवेसी ने दो टूक कहा कि बिलकिस बानो मामले में देश की सामूहिक चेतना को इस बात पर राजी होना था कि सभी दोषियों को सजा-ए-मौत मिले.

ऐसा महसूस होता है कि क़ानून विशेषज्ञ, वकील, विद्वान, राजनीतिज्ञ या आम आदमी, समाज के सभी लोग इन दोनों मामलों में साफ तौर पर अंतर और भेदभाव देख रहे हैं और बेचैन हैं. निर्भया मामले में सुप्रीम कोर्ट का निर्णय आने के बाद बिलकिस बानो और उसके शौहर का ये सवाल भी प्रत्येक व्यक्ति को बेचैन कर देता है कि उसके मामले में दोषियों को फांसी की सज़ा क्यों नहीं हो सकती है? इन दोनों का ये सवाल हर न्यायप्रिय व्यक्ति के ज़मीर को झिंझोड़ देता है और वो फिर न्यायपालिका की ओर देखता है.

बहरहाल, बिलकिस बानो ने क़ानून विशेषज्ञों से बातचीत करने और अपने मामले को सुप्रीम कोर्ट में उठाने की बात कही है. उसका कहना है कि वो सुप्रीम कोर्ट से अपील करेगी कि उसके मामले में भी निर्भया मामले की तरह दोषियों को सज़ा दी जाय. गौरतलब है कि बंबई हाई कोर्ट द्वारा बिलकिस बानो मामले का निर्णय निर्भया मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले से एक दिन पहले ही आया है. लेकिन सवाल ये है कि दोनों मामलों में ट्रायल कोर्ट और हाई कोर्ट से जो फैसले सुनाए गए, वो अलग-अलग क्यों हैं? चूंकि सुप्रीम कोर्ट में अभी केवल निर्भया मुक़दमा गया और उसी का निर्णय आया, वो हर जगह और हर मामले में उदाहरण तो बनेगा, लेकिन क्या बिलकिस बानो मुक़दमे में भी भविष्य में ऐसा ही होगा? ये देखने वाली बात होगी. जो लोग एक दिन के अंतर से बिलकिस बानो और निर्भया मामले में आए निर्णयों को बुनियाद बताकर सवाल खड़े कर रहे हैं, उनकी बातों में वज़न तो महसूस होता ही है. इसमें कोई शक नहीं है कि ऐसे अपराध में सजा-ए-मौत से कम सजा नहीं होनी चाहिए. ■

feedback@chauthiduniya.com

मैं इंतक़ाम नहीं, इंसाफ़ चाहती हूं: *बिलक़िस बानो*

बिलकिस बानो अपने शौहर याकूब और बेटी के साथ बंबई हाई कोर्ट के निर्णय के चार दिन और निर्भया मुक़दमे के निर्णय के तीन दिन बाद दिल्ली में थीं. इस मौके पर 8 मई को चौथी दुनिया से बातचीत करते हुए बिलकिस बानो ने जो विचार प्रकट किए, वो प्रस्तुत है:

बीते 15 वर्षों के दौरान न्याय के संघर्ष में हम दर-दर की ठोकरे खाते रहे. हमलोगों ने खौफ़ के कारण इस दौरान कम से कम 20 से 25 मकान बदले. जबकि दूसरी ओर 2008 में ट्रायल कोर्ट से दोषी क़रार दिए जाने के बाद आरोपी कई बार जेल से बाहर आए. जब-जब वे लोग (आरोपी) पेरोल पर बाहर आए, उन्होंने हमें धमकी दी. हमें पुलिस से कोई उम्मीद नहीं थी. हमें खुशी है कि हाई कोर्ट ने दोषी पुलिस अधिकारियों को भी सज़ा सुनाई है. मैं इंतक़ाम नहीं, इंसाफ़ चाहती हूं. मैं चाहती हूं कि मेरी बच्चियां सुरक्षित भारत में पलें-बढ़ें. मैं अपनी बच्चियों को अच्छी शिक्षा-दीक्षा देना चाहती हूं. 15 वर्ष का मेरा और मेरे परिवार का जो अनुभव रहा है, उसके आधार पर मेरी बड़ी बेटी एक वकील बनना चाहती है. हालांकि न्याय के लिए हमारा सफर काफी लंबा रहा, लेकिन भारतीय न्यायपालिका में हमारा विश्वास फिर से बहाल हुआ है. हमलोग अब किसी हद तक संतुष्ट हैं. हमें ये भी उम्मीद है कि इसी प्रकार बलात्कार के अन्य मामलों में भी पीड़ितों को इसाफ मिलता रहेगा. ■

अधिकारियों को रेल मंत्री की फटकार के बाद भी दूर नहीं हुई ट्रेनों की लेटलतीफी

रेंग रही है प्रभु की रेल

निरंजन मिश्रा

एक व्यंग्यकार ने व्यवस्था पर तंज कसते हुए कहा था कि हमारी सरकार व्यवस्था ठीक करने के लिए हमेशा कड़े कदम उठाती है, लेकिन वे कदम इतने कड़े होते हैं कि उठ ही नहीं पाते. ये बात आज भारतीय रेल व्यवस्था की दशा-दिशा पर सटीक बैठती है. देरी से चलने की तमाम सिमाएं तोड़ती जा रही ट्रेनों की स्थिति सुधारने के लिए जब रेल मंत्री ने अफसरों को फटकार लगाई, तो एक उम्मीद जगी कि अब ट्रेनें सही समय पर लोगों को उनके गंतव्य तक पहुंचाएंगी. लेकिन लगभग एक महीने बीत जाने के बाद भी कोई सुधार होता दिख नहीं रहा है. ट्रेनों की लेटलतीफी का आलम ये है कि कई ट्रेनें अब भी 12-12 घंटे की देरी से चल रही हैं. जबकि अभी ना तो धुंध का कहर है और ना ही बरसात बाधा बन रही है, लेकिन फिर भी ट्रेनें लेट होने के सारे रिकॉर्ड तोड़ती जा रही हैं.

गौरतलब है कि बीते 18 अप्रैल को रेल मंत्री सुरेश प्रभु ने लेट हो रही ट्रेनों को लेकर अपने अधिकारियों को फटकार लगाई थी और जल्द से जल्द ट्रेनों को लेटलतीफी से निजात दिलाने के निर्देश दिए थे. उन्होंने कहा था कि अधिकारी समय की पाबंदी में सुधार लाएं या कार्रवाई का सामना करने को तैयार रहें. रेल मंत्री ने जोनल प्रमुखों को ये भी निर्देश दिया था कि रात में 10 बजे से सुबह सात बजे के बीच ट्रेनों के आवागमन की निगरानी के लिए एक वरिष्ठ अधिकारी की तत्काल तैनाती की जाए. रेलमंत्री के इस निर्देश को लगभग एक महीने बीत गए, लेकिन रेल अधिकारियों की मानें तो अब तक ऐसी कोई तैनाती हुई ही नहीं है. चौथी दुनिया से बातचीत में समस्तीपुर रेलमंडल के एक अधिकारी ने कहा कि 'आदेश पर तभी अमल होता है, जब उसके लिए उपयुक्त संसाधन हों. अधिकारियों की संख्या तो उतनी ही है, जितनी पहले थी. इन आदेशों पर अमल के लिए नए अधिकारी तो पैदा नहीं किए जा सकते न. वैसे मंत्री जी के ओदश को अभी एक महीने भी नहीं हुए, रेलवे में आदेश पर अमल की रफ्तार भी वहीं है, जो रेलवे की रफ्तार है.' इस रेल अधिकारी की बातों से सहज ही समझा जा सकता है कि वर्तमान में रेलवे की दशा-दिशा क्या है.

ट्रेन सुविधा डॉट कॉम की जिस रिपोर्ट के बाद रेल मंत्री एक्शन में दिखे थे, वो रिपोर्ट सचमुच रेलवे के लिए शर्मिंदगी की बात है. इसके अनुसार 2017 में 15 घंटे से ज्यादा लेट होने वाली ट्रेनों की संख्या 2015 के मुकाबले तीन गुना बढ़ गई है. 2015 में 15 घंटे से ज्यादा लेट होने वाली ट्रेनों की संख्या 479 थी जो 2017 में बढ़कर 1337 हो गई. एक जनवरी से लेकर 15 अप्रैल के बीच के समय में ट्रेनों के समय से चलने की दर घटकर 79 प्रतिशत रह गई है, जो पिछले साल इसी अवधि में 84 प्रतिशत थी. उस रिपोर्ट में जिन ट्रेनों को सबसे ज्यादा लेट बताया गया था वे सभी अब भी लेट चल रही हैं. जब वे रिपोर्ट लिखी जा रही है तब भी अजमेर-सियालदाह अप एक्सप्रेस सवा 5 घंटे, हावड़ा-आनंद विहार अप एक्सप्रेस 5 घंटे, संपूर्ण क्रांति अप एक्सप्रेस पांच घंटे, कालका एक्सप्रेस साढ़े चार घंटे की देरी से चल रही हैं. 2014 में केंद्र में भाजपा की सरकार आने के बाद रेलवे में बड़े सुधार की बात कही गई थी. मोदी सरकार के पहले रेलमंत्री रहे सदानंद गौड़ा लगभग साढ़ चार महीने ही पद पर रह पाए. उनके बाद रेलमंत्री बनाए गए सुरेश प्रभु से रेलवे के कालाकल्प की उम्मीद थी. लेकिन नियमों में बदलाव और तत्काल टिकट पर सरचार्ज लगाकर यात्रियों पर महंगाई का बोझ लादने से आगे बात बढ़ी नहीं. ट्वीट के जरिए यात्रियों की समस्याएं सुनकर और उनके समाधान का प्रयास कर रेल मंत्री जी अपनी पीठ थपथपाते रहे, इधर ट्रेनें चलते-चलते रेंगने लगीं. ■

feedback@chauthiduniya.com

लेट ट्रेन से आजीज़ एक युवक ने खोल दी रेलवे की कलई

उत्तर प्रदेश के बलिया के रहने वाले अजयेन्द्र त्रिपाठी होली में जिस लिछवी एक्सप्रेस से घर जा रहे थे, वो 13 घंटे लेट थी. लौटते समय वही ट्रेन 14 घंटे की देरी से दिल्ली पहुंची. इससे पहले भी अजयेन्द्र का सामना कई बार ट्रेनों की लेटलतीफी से हुआ था. वेब प्रोग्रामर इस युवक के मन में ख्याल आया कि क्यों न कुछ ऐसा बनाया जाय जिससे रेलवे की लेटलतीफी का पूरा कच्चा चिट्ठा खुलकर लोगों के सामने आ जाय. इसी कोशिश में अजयेन्द्र ने एक वेबसाइट बनाया. www.trainsuvidha.com नाम की इस वेबसाइट में कुल 2,952 ट्रेनों की पिछले चार साल में जनवरी से अप्रैल के बीच की लेटलतीफी के आंकड़े को दर्शाया गया है. इसमें 400 किमी से ज्यादा की दूरी तय करने वाली एक्सप्रेस, सुपर फास्ट, शताब्दी और राजधानी ट्रेनों को ही शामिल किया गया है. इसमें पैसेंजर ट्रेनें शामिल नहीं हैं.

चौथी दुनिया से बातचीत में अजयेन्द्र ने कहा कि मैंने ट्रेनों के परिचालन और समयावधि की जानकारी देने वाली कई वेबसाइट्स से ये डाटा लेकर एक जगह इसे तुलनात्मक रूप में पेश किया है. जिन ट्रेनों को मैंने इसमें शामिल किया है, उनमें से किसी भी ट्रेन के बारे में आसानी से ये जाना जा सकता है कि वो ट्रेन 2014 से 2017 तक जनवरी से अप्रैल महीने के बीच किस दिन कितने घंटे लेट थी. अजयेन्द्र कहते हैं कि ये वेबसाइट बनाने से पहले मैंने रेलवे के पीआरओ अनिल सक्सेना का बयान सुना था कि लगातार लेट हो रही कई ट्रेनों के तुलनात्मक अध्ययन के लिए रेलवे के पास कोई सेंट्रलाइज्ड डाटा नहीं है. जबकि मैंने कई वेबसाइट्स की मदद से यही डेटा हासिल कर लिया. लेट हो रही ट्रेनों के पीछे के कारणों और इसके समाधान के बारे में जानने के लिए अजयेन्द्र ने एक आरटीआई भी दाखिल किया है, जिसका जवाब रेलवे की तरफ से अब तक नहीं दिया गया है. ■

सस्पेंशन के ज़रिए सच्चाई छुपाने की कोशिश!

आरटीआई के जरिए हुए इस खुलासे ने रेलवे को कठघरे में खड़ा कर दिया था कि भारतीय रेल में खान-पान का इंतजाम देखने वाली आईआरसीटीसी 9,270 रुपए प्रति किलोग्राम दही, 1241 रुपए प्रति लीटर रिफाइंड तेल और 49 रुपए प्रति किलोग्राम टाटा का नमक खरीद रही है. आरटीआई में मिले जवाब के आधार पर दावा किया गया था कि आटा 250 रुपए प्रति किलो खरीद कर 450 रुपए प्रति किलो, मैदा 20 रुपए प्रति किलो खरीद कर 35 रुपए प्रति किलो, बासमती चावल 255 रुपए प्रति किलो खरीद कर 745 रुपए प्रति किलो के हिसाब से बांटा गया. इस खुलासे के बाद चौतरफा घिरे रेलवे ने इसे टाइपिंग मिस्टेक करार दिया और आनन फानन में उन तीन अधिकारियों को सस्पेंड कर दिया गया, जिन्होंने उस आरटीआई का जवाब दिया था. रेलवे के पीआरओ अनिल सक्सेना का कहना है कि ये कोई घोटाला नहीं है, जवाब देने वालों ने गलत जवाब दिया है और उनके खिलाफ रेलवे ने एक्शन भी लिया गया है. वहीं, आरटीआई के जरिए ये जवाब हासिल करने वाले अजय बोस का कहना है कि इसमें भयंकर घपला है और रेलवे इस सच्चाई को छुपाना चाहती है. रेलवे ने तो ऐसे भी बहुत कोशिश की कि वे इस आरटीआई का जवाब न दें, क्योंकि मुझे तीसरी बार में ये जवाब दिया गया. ■

पॉस्को के जाने के बाद

क्या किसानों की ज़मीन वापस मिलेगी

बिभूतिपति
feedback@chauthiduniya.com

पोहांग स्टील कंपनी यानि पॉस्को ने आखिरकार ओडीशा सरकार को बता दिया कि वह 12 मिलियन मीट्रिक टन इस्पात संयंत्र परियोजना को वापस ले रही है. वैसे तो पॉस्को ने 2015 से ही अपना परिचालन निलंबित कर दिया था और 2016 में घोषणा की थी कि ये परियोजना आगे नहीं जाएगी. लेकिन कंपनी ने अब जा कर आधिकारिक तौर पर ओडीशा सरकार को बताया है कि वह अपनी परियोजना यहां से वापस ले जा रही है. ओडीशा सरकार अभी तक उम्मीद लगाए हुए थी कि शायद पॉस्को मान जाए. इसी वजह से सरकार ने पॉस्को से 86 करोड़ रुपए के उपकर, भूमि परिवर्तन शुल्क और भूमि के बदले दूसरे खर्चों की मांग की थी. पॉस्को ने इस पत्र का जवाब देते हुए ओडीशा सरकार को सूचित किया है कि इसे ज़मीन की जरूरत नहीं है और वह मांग की गई राशि का भुगतान नहीं कर सकती है. इसके बाद इस बहु प्रचारित करीब 52000 करोड़ रुपए के सबसे बड़े प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का अंत हो गया. लेकिन, पूरी कहानी अभी खत्म नहीं हुई है. सवाल है कि क्या स्टील प्लांट के लिए अधिग्रहित भूमि अब मूल निवासियों को वापस लौटा दी जाएगी?

भूमि संघर्ष अभी ख़त्म नहीं हुआ है

जमीन वापस लेना ग्रामीणों के लिए आसान काम नहीं होगा. ओडीशा सरकार ने 2008, 2010, 2011 और 2013 में पॉस्को के लिए 2,700 एकड़ जमीन का अधिग्रहण किया था. ज्यादातर अधिग्रहण पुलिस और अति उत्साही अधिकारियों के द्वारा जबरन किया गया था. 15,000 पान के बगीचों को इसके लिए काट दिया गया था. पान की खेती से किसानों को अच्छी आमदनी होती थी. इस वजह से किसानों ने इस अधिग्रहण का जबरदस्त प्रतिरोध किया था. अब पॉस्को ने परियोजना वापस ले लिया है, तो जाहिर है स्थानीय लोग सोच रहे हैं कि जमीन उन्हें वापस लौटा दी जाएगी और वे अपनी पुरानी आजीविका फिर से शुरू कर सकेंगे. रिपोर्टों के अनुसार स्थानीय लोगों ने पॉस्को के जाने की खबर सुनते ही 30 फीसदी से अधिक पान बगानों पर फिर से कब्जा कर लिया है. लेकिन ऐसा लगता है कि सरकार की ओर से स्थानीय लोगों को धमकी दी गई है. कहा गया है कि पुलिस अतिक्रमणकारियों के खिलाफ कर्रवाई करेगी. दूसरी ओर, उद्योग मंत्री ने सदन को सूचित किया है कि जिस 2,700 एकड़ भूमि का अधिग्रहण किया गया था, उसे अब औद्योगिक विकास निगम (आईडीसीओ) के लैंड बैंक को दे दिया जाएगा. इसका अर्थ है कि आईडीसीओ को दी गई अधिग्रहित भूमि का उपयोग अन्य औद्योगिक परियोजनाओं के लिए बाद में किया जाएगा. पॉस्को की जगह अन्य उद्योगों को ये जमीन दे दी जाएगी.

सामाजिक कार्यकर्ता प्रफुल्ल सामंत्रा कहते हैं कि ये भूमि ग्रामीणों को वापस करनी चाहिए, क्योंकि ये जमीन फॉरेस्ट कैटेगरी के तहत आता है और वन अधिकार अधिनियम 2006 के तहत ग्रामीण ही भूमि प्राप्त करने के हकदार हैं. भारत सरकार की मीना गुप्त कमेटी ने भी सिफारिश की है कि ये जमीन ग्राम सभा द्वारा ग्रामीणों को दी जा सकती है. जो लोग भी 100 साल से इस जमीन पर खेती कर रहे है, उन्हें जमीन दी जानी चाहिए. कानूनी रूप से वन भूमि ग्रामीणों से जुड़ी है और वहां ऐसा कोई बड़ा उद्योग नहीं होना चाहिए जो तटीय वन और जैव विविधता को नष्ट करे.

बहरहाल, एक ओर जहां राज्य सरकार भूमि को अपने साथ बनाए रखने के लिए आगे बढ़ रही है, ताकि इसे आगे अन्य उद्योगों को दिया जा सके, वहीं ग्रामीण जमीन वापस लेने के लिए फिर से कमर कस चुके हैं. पॉस्को प्रतिरोधी समिति के अभय साहू कहते हैं कि हम नवीन पटनायक सरकार के भूमि बैंक बनाने के दुर्भाग्यपूर्ण घोषणा का विरोध करते हैं. जब पॉस्को परियोजना खत्म हो गई है, तो सरकार को चाहिए कि वह लोगों को अधिग्रहित भूमि वापस लौटाए. अगर सरकार ऐसा करने में विफल होती है, तो इस क्षेत्र के लोग अपनी जमीन पर हक के लिए एक और आंदोलन करेंगे और यह पॉस्को आंदोलन से अधिक तीव्र होगा.

ऐसे लोग भी अब अपने साथी ग्रामीणों के साथ खड़े हो गए हैं, जिन्होंने कभी पॉस्को का समर्थन किया था. ऐसे लोग भी अब आईडीसीओ को जमीन दिए जाने के सरकार के फैसले के खिलाफ हैं. गोविंदपुर गांव के चंदन मोहंती ने पॉस्को को अपनी जमीन स्वेच्छा से दे दी थी और 52,000 करोड़ रुपए की इस परियोजना के लिए सहयोग किया था. वे

पॉस्को के ट्रांजिट शिविर में रह रहे थे. मोहंती कहते है कि प्रशासन, पॉस्को और सरकार ने हमें धोखा दिया. हमने पहले चरण में ही अपनी जमीन दी थी. हम शिविर में रह रहे थे. 5 साल पहले तत्कालीन जिला कलेक्टर सत्यव्रत मलिक द्वारा कहा गया कि हम शिविर खाली कर दें, क्योंकि पॉस्को अब संयंत्र स्थापित नहीं करेगा. अगर सरकार को इसके बारे में पता था, तो सरकार इतने लंबे समय तक जमीन क्यों अपने पास रखी? राज्य सरकार को जितनी जल्दी हो सके, हमें भूमि वापस करनी चाहिए.

काटे गए पेड़ों का हिसाब कौन देगा

2012–13 के दौरान भूमि अधिग्रहण के समय, जिला प्रशासन और आईडीसीओ के अधिकारियों ने पाराद्वीप तट के पास वन क्षेत्र के 8 लाख वृक्षों को काट दिया था. स्थानीय लोगों ने जब विरोध किया, तो उन्हें बेरहमी से पीटा गया और जंगल से बेदखल किया गया. स्थानीय लोग दावा करते हैं कि पेड़ों का काटना अवैध था. उनके पास पर्यावरण और वन मंत्रालय की अनुमति नहीं थी. ग्रामीण पूछ रहे हैं कि तटीय वातावरण में पर्यावरण को हुई इस अपूर्णीय क्षति के लिए दोषी कौन है? पॉस्को प्रतिरोध समिति के अभय साहू कहते हैं कि यह विशेष क्षेत्र चक्रवात वाला क्षेत्र है, इसलिए यहां वृक्षों का बड़ा महत्व है. अब जब वृक्ष काट दिए गए हैं, तो ऐसे में यह क्षेत्र अब चक्रवात और समुद्री ज्वार के खतरे की जद में है. राज्य सरकार को युद्ध स्तर पर पेड़ लगाने चाहिए और इसकी लागत कंपनी से ही ली जानी चाहिए.

बारह वर्षों के बाद, हालात फिर से वहीं वापस आ गए है, जहां से शुरुआत हुई थी. सरकार अधिग्रहीत भूमि पर उद्योग के आने का इंतजार कर रही है, वहीं ग्रामीण अपनी जमीन वापस लेने के लिए प्रतिबद्ध हैं. इस बार भी ग्रामीणों को राज्य से लड़ना होगा. लेकिन सरकार को सोचना होगा कि वह जन आकांक्षा के खिलाफ जा कर उद्योग लगाएगी या जनता की आवाज को सुनेगी.■

feedback@chauthiduniya.com

कौन सच्चा, कौन झूठा

राज्य कहे अफस्पा हटाओ केंद्र कहे अफस्पा लगाओ

एस. बिजेन सिंह

अफस्पा (आर्म्ड फोर्सेस स्पेशल पावर एक्ट) महज एक शब्द नहीं, बल्कि एक विवादास्पद कानून है, जिसकी आड़ में कई निर्दोष लोगों की जानें चली गईं. अफस्पा को लेकर समय-समय पर जम्मू-कश्मीर समेत पूर्वोत्तर के कई राज्यों से विरोध की आवाज उठती रही है. स्थानीय सरकारें एवं केंद्र सरकारों के बीच अफस्पा एक विवाद का मुद्दा रहा है. हाल में एक खबर आई कि असम सरकार केंद्र की सिफारिशों से पहले राज्य के कुछ इलाकों से विवादित आर्म्ड फोर्सेस स्पेशल पावर एक्ट हटाने पर विचार कर सकती है. गौरतलब है कि असम को अशांत इलाका घोषित करते हुए केंद्र सरकार ने 27 नवंबर 1990 को इस अधिनियम को लागू किया था. केंद्र सरकार ने उल्फा के नेतृत्व में आतंकवाद पर काबू पाने के लिए पूरे राज्य में अफस्पा लगाने का फैसला लिया था.

असम सरकार इस कानून को पूरे राज्य से हटाने की कोशिश पहले से कर रही थी. गृह मंत्रालय के साथ हुई बैठक में राज्य सरकार ने यह मुद्दा उठाया था कि राज्य के कई हिस्सों से इस अधिनियम को हटाया जाए. राज्य के एडीजी (स्पेशल ब्रांच) पल्लव भट्टाचार्य ने बताया कि राज्य के किन-किन इलाकों से अफस्पा हटाया जाना चाहिए, यह फैसला चर्चा के बाद लिया जाएगा. उन्होंने बताया कि राज्य में बड़ी संख्या में सेना के जवान तैनात हैं. अगर इस अधिनियम को कुछ इलाकों से वापस लेना है तो राज्य सरकार को उन क्षेत्रों में वैकल्पिक सुरक्षा का इंतजाम करना होगा. इसके बाद इस अधिनियम के बजाय, उन क्षेत्रों में कार्रवाई करने के लिए आईपीसी का इस्तेमाल किया जाएगा.

यह खबर आने के 24 घंटे बाद ही केंद्र सरकार ने आदेश जारी किया कि अफस्पा कानून के तहत पूरे असम को और तीन महीनों के लिए अशांत क्षेत्र घोषित कर दिया गया है. केंद्र ने यह कदम विद्रोही समूहों उल्फा (यूनाइटेड लिबरेशन फ्रंट ऑफ असम), एनडीएफबी (नेशनल डेमोक्रेटिक फ्रंट ऑफ बोडोलैंड) और अन्य विद्रोही समूहों की विभिन्न हिंसक गतिविधियों का हवाला देते हुए उठाया है. एक गजट अधिसूचना में गृह मंत्रालय ने कहा कि मेघालय से लगे सीमावर्ती क्षेत्रों के अलावा समूचे असम को अफस्पा के तहत तीन

मई से तीन महीने के लिए अशांत घोषित कर दिया गया है. मंत्रालय ने कहा कि असम में 2016 में हिंसा की 75 घटनाएं हुईं, जिसमें चार सुरक्षाकर्मियों सहित 33 लोग मारे गए और 14 अन्य लोगों का अपहरण किया गया. इसके अलावा 2017 में हिंसा की नौ घटनाएं हुई हैं जिसमें दो सुरक्षाकर्मी समेत चार लोग मारे गए. इन सभी हिंसा की वारदातों को विद्रोही गुटों यानी उल्फा और एनडीएफबी ने अंजाम दिया. एक दूसरे गजट नोटिफिकेशन में केंद्रीय गृह मंत्रालय ने कि राज्य में हिंसा कम हो रही है, इसलिए अफस्पा हटाने की कोशिश की जा रही है, तो दूसरी तरफ केंद्र सरकार ने विद्रोही समूहों की विभिन्न हिंसक गतिविधियों का हवाला देते हुए अफस्पा को पूरे राज्य में तीन महीने बढ़ाने के लिए कदम उठाया है. तीन जनवरी 2017 को नागालैंड में भी केंद्र सरकार ने अशांत राज्य बताकर अफस्पा छह महीने के लिए बढ़ाया था. पिछले कई दशक से असम समेत पूर्वोत्तर के राज्यों में हिंसक गतिविधियां होती रही हैं. इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है, लेकिन सवाल यह है कि आखिर कब तक पूर्वोत्तर के राज्यों को अशांत बताकर अफस्पा को बनाए रखेंगे. आजादी के इतने साल बाद भी देश के कुछ हिस्सों में वही दमनकारी नीति क्यों अपनाना पड़ा? जब कोई राज्य सरकार अपनी इच्छाशक्ति दिखाकर अफस्पा हटाने की कोशिश करती है, तो केंद्र सरकार उसे बनाए रखने का प्रयास करती है. लेकिन असम में अब भाजपा की नवनिर्मित सरकार है. असम की भाजपा सरकार का यह निर्णय केंद्र की भाजपा सरकार के खिलाफ कैसे हो सकता है? ऐसा तो नहीं कि अफस्पा को लेकर राज्य और केंद्र सरकार में मतभेद की स्थिति पैदा हो गई है.

गौरतलब है कि 2015 को त्रिपुरा से अफस्पा हटाया गया था. इससे यह बात साफ हो गई कि अगर राज्य सरकार मजबूत इच्छाशक्ति का परिचय दे और कानून-व्यवस्था दुरुस्त हो, तो किसी भी राज्य से अफस्पा हटाया जा सकता है. यह स्थानीय सरकार की ईमानदार कोशिश का नतीजा है कि इतने विवादास्पद कानून को बिना रोक-टोक के राज्य से हटा लिया गया. 16 फरवरी 1997 को केंद्र सरकार ने त्रिपुरा में अफस्पा लगाया था, जब राज्य में विरोधी गुट नेशनल लिबरेशन फ्रंट ऑफ त्रिपुरा और ऑल त्रिपुरा टाइगर फोर्स चरम पर था. दोनों गुट अब भी बांग्लादेश में सक्रिय हैं और वहीं हथियार का प्रशिक्षण ले रहे हैं. इन गुटों की मांग है कि त्रिपुरा को भारत से अलग किया जाए.

दूसरी तरफ मणिपुर में भी कई दशकों से इस कानून को हटाने को लेकर विरोध चल रहा है. इरोम शर्मिला इस कानून के खिलाफ 16 साल आमरण अनशन कर चुकी हैं. राज्य में अफस्पा को लेकर संतोष हेगड़े एवं जस्टिस जीवन रेड्डी कमेटी गठित की गई थी, जिसने अपनी रिपोर्ट में इस कानून को दोषपूर्ण बताया था. सुप्रीम कोर्ट ने भी 2013 में राज्य में मुठभेड़ के छह मामलों को लेकर फैसला सुनाया था. फैसले में सभी मुठभेड़ को फर्जी बताया गया था. इतना कुछ होने के बाद भी राज्य में अफस्पा को लेकर स्थानीय सरकार कोई कदम नहीं उठा रही है. राज्य की नव निर्मित भाजपा सरकार भी अबतक अफस्पा हटाने को लेकर गंभीर नहीं दिखाई देती है. ■

क्या है आर्म्ड फोर्सेस स्पेशल पावर एक्ट (अफस्पा)

आर्म्ड फोर्सेस स्पेशल पावर एक्ट संसद में 11 सितंबर 1958 को पारित किया गया था. यह कानून पूर्वोत्तर के अशांत राज्यों जैसे असम, मणिपुर, मेघालय, अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम एवं नागालैंड में लागू है. यह कानून अशांत क्षेत्रों में सेना को विशेषाधिकार देने के लिए बनाया गया था. 1958 में अफस्पा बना तो यह राज्य सरकार के अधीन था, लेकिन 1972 में हुए संशोधन के बाद इसे केंद्र सरकार ने अपने हाथों में ले लिया. संशोधन के मुताबिक किसी भी क्षेत्र को अशांत क्षेत्र घोषित कर वहां अफस्पा लागू किया जा सकता है. इस कानून के तहत सेना को किसी भी व्यक्ति को बिना कोई वारंट के तलाशी या गिरफ्तार करने का विशेषाधिकार है. यदि वह व्यक्ति गिरफ्तारी का विरोध करता है तो उसे जबरन गिरफ्तार करने का पूरा अधिकार सेना के जवानों को है. अफस्पा कानून के तहत सेना के जवान किसी भी व्यक्ति की तलाशी केवल संदेह के आधार पर ले सकते हैं. गिरफ्तारी के दौरान सेना के जवान जबरन उस व्यक्ति के घर में घुस कर तलाशी ले सकते हैं. सेना के जवानों को कानून तोड़ने वाले व्यक्ति पर इस कानून के तहत फायरिंग का भी पूरा अधिकार है. अगर इस दौरान उस व्यक्ति की मौत भी हो जाती है तो उसकी जवाबदेही फायरिंग करने या आदेश देने वाले अधिकारी पर नहीं होगी. ■

feedback@chauthiduniya.com

लालू के दिल्ली कूच को झटके पर झटका

सरोज सिंह

कहते हैं इतिहास अपने आप को दोहराता है. लालू प्रसाद के राजनीतिक जीवन के उतार-चढ़ाव को देखें, तो ये बात सौ फीसदी सही लगती है. जब-जब लालू सत्ता के शीर्ष पर रहे या फिर सत्ता के शीर्ष पर पहुंचने की कवायद करते दिखे, ठीक उसी समय कोर्ट के फैसलों ने इनके अभियान को ब्रेक लगाया है और इनके रुतबे को कम किया है. लालू प्रसाद की राजनीतिक ताकत से पूरा देश वाकिफ है. इसलिए हाल के दिनों में जब सुशील मोदी ने इन्हें और इनके बेटों को आरोपों में घेरना शुरू किया, तो लालू के माथे पर शिकन तक नहीं आई. उल्टे इन्होंने 27 अगस्त को गांधी मैदान में भाजपा हटाओ देश बचाओ महारैली करने का ऐलान कर दिया. राजगीर में अपनी पार्टी के सम्मेलन में लालू प्रसाद पूरी लय में थे और वहीं पर इन्होंने अपने दिल्ली अभियान का खाका भी खींच लिया. लालू चाहते हैं कि 2019 के चुनाव और उसके बाद के राजनीतिक परिदृश्य में वे किंग मेकर की भूमिका में रहें. 27 अगस्त की पटना रैली इसी की एक कड़ी है. लालू प्रसाद इस रैली के लिए देश के सभी भाजपा विरोधी दलों के प्रमुख नेताओं को बुलाने वाले हैं. बताया जा रहा है कि इस रैली के लिए लालू प्रसाद सोनिया गांधी, राहुल गांधी, नवीन पटनायक, नीतीश कुमार, अखिलेश यादव, मायावती, अरविंद केजरीवाल, करुणानिधि, ममता बनर्जी सहित कई बड़े नेताओं को बुलाना चाहते हैं, ताकि विपक्षी एकता की मजबूत बुनियाद पटना में रखी जा सके. इस रैली के बहाने लालू अपने बेटों को भी राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित करना चाहते हैं. देश के सभी बड़े नेताओं के सामने तेजस्वी और तेजप्रताप का परिचय इनके आगे की राह को आसान कर सकता है. इन्हीं सब बातों के मद्देनजर लालू प्रसाद ने एक व्यापक रणनीति के तहत अपनी राजनीतिक योजनाओं को अंजाम देना शुरू कर दिया था. जानकार बताते हैं कि लालू प्रसाद ये नहीं चाहते हैं कि भाजपा विरोध के अभियान में नीतीश कुमार इनसे आगे निकल पाएं. इसलिए वे हर संभव कोशिश कर रहे हैं कि विपक्षी एकता के किसी भी पहल का वे ही अगुआ बनें. लालू प्रसाद अपने इस मुहिम में लगे ही थे कि इनको झटके पर झटका लगना शुरू हो गया.

सुशील मोदी के आरोपों का लालू प्रसाद ने खुद तो नहीं, पर अपने प्रवक्ताओं से जवाब दिलवाना शुरू कर दिया था. जानकार बताते हैं कि इन आरोपों को लेकर लालू प्रसाद बहुत चिंतित भी नहीं हैं, क्योंकि इस तरह के आरोपों से इनका पूरे राजनीतिक जीवन में आमना-सामना होता ही रहा है. ये सिलसिला अभी चल ही रहा था कि एक निजी चैनल ने शहाबुद्दीन और लालू प्रसाद के बीच की बातचीत के टेप को सार्वजनिक कर दिया. बात यहीं से बिगड़नी शुरू हो गई. लालू खेमे को नाराजगी टेप के सार्वजनिक होने से कहीं ज्यादा बातचीत टेप होने पर है. रघुवंश प्रसाद कहते हैं कि जब लालू प्रसाद का ही फोन टैप हो रहा है, तो दूसरे की क्या बात की जाए. इनकी मांग है कि इसकी जांच हो कि फोन टेप किसने और किसके कहने पर किया. रघुवंश प्रसाद कहते हैं कि कोई है जो सूबे के बड़े नेताओं की बातचीत को सुन रहा है. अगर ऐसा है, तो इसके गंभीर परिणाम हो सकते हैं. लालू प्रसाद की जान को भी खतरा हो सकता है. भाजपा को इन बातों से ये कहने का मौका मिल गया कि सुशासन में जेल से ही शासन चल रहा है. शहाबुद्दीन और लालू प्रसाद की बातचीत होती है और नीतीश कुमार मूकदर्शक बने हुए हैं. सुशील मोदी कहते हैं कि ये सुशासन का मजाक है. जेल से शहाबुद्दीन लालू प्रसाद से बात करते हैं और एसपी को

हटाने की मांग करते हैं. क्या सुशासन ऐसा ही होता है. जदयू इन घटनाओं पर बहुत ही बारीक नजर रख रहा है और बहुत ही सधी हुई प्रतिक्रिया दे रहा है. ये मामला अभी गर्म ही था कि इसी बीच चारा घोटाले में लालू प्रसाद को सुप्रीम कोर्ट से करारा झटका लग गया. सुप्रीम कोर्ट ने चारा घोटाले के चार मामलों में लालू प्रसाद पर आपराधिक साजिश के तहत मुकदमा चलाने का आदेश दे दिया. झारखंड हाईकोर्ट ने ऐसा न करने का आदेश दिया था. सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि सीबीआई की विशेष अदालत इसे नौ महीने में पूरा करे. इस फैसले के बाद लालू प्रसाद को सीबीआई कोर्ट से फिर से जमानत लेनी पड़ सकती है. हालांकि लालू प्रसाद के वकील चितरंजन सिन्हा का कहना है कि इसकी अभी तुरंत जरूरत नहीं है. सुप्रीम कोर्ट ने झारखंड हाईकोर्ट द्वारा राहत दिए जाने के फैसले पर भी कड़ी आपत्ति जताई. जस्टिस अरुण मिश्रा और जस्टिस अमिताव रॉय की पीठ ने कहा कि हाईकोर्ट को ऐसे मामले के निपटारे में सावधानी बरतनी चाहिए. हाईकोर्ट का आदेश अवैध, त्रुटिपूर्ण व कानून के आधारभूत सिद्धांत के विपरीत है. सुप्रीम कोर्ट के इस आदेश के बाद सूबे का राजनीतिक पारा आसमान तक पहुंच गया. लालू के आवास पर गहन बैठकों का दौर शुरू हो गया. हमेशा की तरह जदयू ने इस मामले में ज्यादा बोलने से परहेज किया. लेकिन भाजपा ने तो लालू के खिलाफ जोरदार हमला बोल दिया. भाजपा जानती है कि चारा घोटाला लालू प्रसाद की सबसे कमजोर कड़ी है और इस बार जिस तरह से सुप्रीम कोर्ट का फैसला आया है, इससे यह साफ है कि अब नौ महीने के अंदर ही बिहार का राजनीतिक परिदृश्य बदलना तय है. इसलिए भाजपा अब मांग कर रही है कि लालू प्रसाद को राजद का अध्यक्ष पद छोड़ देना चाहिए और नीतीश कुमार को नैतिकता के आधार पर राजद से अलग हो जाना चाहिए. भाजपा अब इस सारे मामले को लेकर पूरे बिहार में जनसंवाद भी करने वाली है. भाजपा पूरे बिहार में आंदोलन करने के लिए एक मजबूत मुद्दे की तलाश में थी और अब उसकी मनोकामना पूरी हो गई है. फिलहाल लालू खेमा बचाव की मुद्रा में है और आगे होने वाली घटनाओं पर इनकी नजर है. लेकिन इतना तो तय है कि राजगीर से जो उर्जा लेकर लालू प्रसाद पटना आए थे, वो उर्जा अब निष्क्रिय हो गई है. कहने का अर्थ ये है कि जो ताकत लालू प्रसाद दिल्ली कूच के लिए लगाना चाहते थे, उसे अब कोर्ट कचहरी में लगाने को मजबूर होना पड़ेगा. साफ है कि लालू प्रसाद के दिल्ली कूच को फिलहाल तो ब्रेक लग ही गया है.■

feedback@chauthiduniya.com

दो दशक से जारी है तारीख़ पर तारीख़

चारा घोटाला, बिहार के संदर्भ में महाघोटाला कहलाता है. वजह, सिर्फ इसमें शामिल रकम (950 करोड़) नहीं है, बल्कि इससे जुड़ा सबकुछ व्यापक रहा है. 21 साल गुजर चुके हैं. सीबीआई को दस्तावेज के लिए 11 करोड़ पन्नों की फोटोकॉपी करानी पड़ी. इस मामले में 978 आरोपी व 8 हजार गवाह रहे. जांच में सीबीआई के 400 अफसर लगे. 70 से ज्यादा जज इस मामले की सुनवाई कर चुके हैं. घोटाले की जांच और अदालती कार्रवाई के दौरान तत्कालीन पशुपालन मंत्री भोला राम तूफानी, चंद्रदेव प्रसाद वर्मा तथा पूर्व तथा पूर्व सांसद राजो सिंह की मृत्यु हो गई. ये भी आरोपी थे. बाकी आरोपियों में लालू प्रसाद, डॉ जगन्नाथ मिश्र, ध्रुव भगत, जगदीश शर्मा, आरके राणा, विद्यासागर निषाद, ज्योति कुमारी कानूनी लड़ाई लड़ रहे हैं. वरीय नौकरशाहों में से बेक जूलियस, के. अरुमुगम, महेश प्रसाद, एमसी सुवर्णो, फूलचंद सिंह, एसएन दुबे, एसी चौधरी, सजल चक्रवर्ती आरोपी बने. बाद में सजल चक्रवर्ती को अदालत ने बरी कर दिया.

- 1995 : सीएजी रिपोर्ट में ये गोलमाल सामने आया. अलग-अलग कोषागारों से रुपए की अवैध निकासी की बात सामने आई.
- 27 जनवरी, 1996 : उपायुक्त अमित खरे ने पशुपालन विभाग के चाईबासा स्थित दफ्तर पर छापा मारा. ऐसे दस्तावेज मिले, जो चारा आपूर्ति के नाम पर रुपए की हेराफेरी की गवाही दे रहे थे. प्राथमिकी दर्ज की गई.
- 11 मार्च, 1996 : पटना हाईकोर्ट ने सीबीआई को जांच का जिम्मा सौंपा
- 19 मार्च, 1996 : सीबीआई ने बिहार पुलिस द्वारा दर्ज 41 मामलों को अपने अधीन लेकर जांच शुरू की.
- 27 मार्च, 1996 : सीबीआई ने चाईबासा ट्रेजरी के मामले में प्राथमिकी दर्ज की
- 23 जून, 1997 : कांड संख्या आरसी 20ए/96 में लालू प्रसाद सहित 56 आरोपियों के खिलाफ चार्जशीट दाखिल हुई.
- 23 जुलाई, 1997 : कोर्ट ने आरोपियों के खिलाफ संज्ञान लिया
- 30 जुलाई, 1997 : राजद अध्यक्ष लालू प्रसाद ने सीबीआई की विशेष अदालत में समर्पण किया. अदालत ने इन्हें न्यायिक हिरासत में भेजा
- 12 दिसंबर, 1997 : 135 दिन न्यायिक हिरासत में रहने के बाद लालू जमानत पर रिहा हुए.
- 4 अप्रैल, 2000 : लालू पर चार्जशीट. इनकी पत्नी राबड़ी देवी को सह आरोपी बनाया गया. मामला आय से अधिक संपत्ति का था. बाद में अदालत ने लालू प्रसाद व राबड़ी देवी को बेकसूर ठहराया.
- 10 मई, 2000 : पटना हाईकोर्ट ने लालू को प्रोविजनल बेल दिया
- 5 अक्टूबर, 2001 : झारखंड बनने के बाद सुप्रीम कोर्ट के आदेश से चारा घोटाले के कमोबेश सभी मामले झारखंड ट्रांसफर किए गए.
- 31 मई, 2007 : सीबीआई के विशेष न्यायाधीश यूएसपी सिन्हा ने आरसी 66ए/96 में 82 लोगों को सजा सुनाई. इसमें लालू प्रसाद के दो भतीजे वीरेंद्र यादव और नागेंद्र राय भी थे.
- 20 जून, 2013 : सीबीआई के स्पेशल जज ने कांड आरसी 20ए/96 में फैसले के लिए तिथि निर्धारित की.
- 30 सितंबर, 2013 : सीबीआई की विशेष अदालत ने लालू प्रसाद को 5 साल की सजा सुनाई. लोकसभा की सदस्यता छोड़नी पड़ी. चुनाव लड़ने पर रोक लगी.
- 14 नवंबर, 2014 : झारखंड हाईकोर्ट ने लालू प्रसाद को राहत देते हुए इन पर घोटाले की साजिश/षड्यंत्र रचने की धारा को हटाने का आदेश दिया. (इसके खिलाफ सीबीआई सुप्रीम कोर्ट पहुंची)
- 20 अप्रैल, 2017 : सुप्रीम कोर्ट ने दोनों पक्षों को सुनने के बाद फैसला सुरक्षित किया.
- 8 मई, 2017 : सुप्रीम कोर्ट ने फैसला सुनाया.

बढ़ गई लालू की परेशानी

सुप्रीम कोर्ट के फैसले से नए सिरे से शुरू होने वाला ट्रायल लालू की परेशानी बढ़ाएगा. झारखंड हाईकोर्ट के फैसले से वे राहत में थे. लेकिन अब इनकी मुसीबतें बढ़ेंगी. अदालतों में पेशी, बेल और कानूनी दांव-पेंच का खेल फिर शुरू होगा. जिन मामलों का ट्रायल रुक गया था, वे अब फिर शुरू हो जाएंगे.■

आरसी 20 ए/96 में मिली है सज़ा

चारा घोटाला केस (आरसी 20ए/96) में चाईबासा कोषागार से 37.70 करोड़ की अवैध निकासी के मामले में लालू दोषी करार दिए गए हैं. 30 सितम्बर 2013 को सीबीआई अदालत ने उन्हें 5 साल कैद की सजा दी. हालांकि 13 दिसम्बर 2013 को लालू को जमानत मिल गई. सजा के कारण इन्हें लोकसभा की सदस्यता गंवानी पड़ी. इनके चुनाव लड़ने पर रोक लगा दी गई.■

47 में से 15 आरोपी जीवित नहीं हैं

आरसी 38 ए/96, दुमका कोषागार से हुई फर्जी निकासी से संबंधित है. इसमें लालू प्रसाद समेत कुल 47 आरोपी हैं. इनमें से 15 अब इस दुनिया में नहीं हैं.■

लालू पर दर्ज चारा घोटाला के मुकदमे

कांड संख्या	ट्रेजरी	फर्जी निकासी	कुल गवाह
आरसी 20ए 96	चाईबासा	37.70 करोड़	590
आरसी 38ए 96	चाईबासा	37.68 करोड़	345
आरसी 47ए 96	डोरंडा	184 करोड़	804
आरसी 64ए 96	दुमका	3.47 करोड़	269
आरसी 68ए 96	देवघर	97 करोड़	287

छत्तीसगढ़ में तीन साल में 11000 बच्चे लापता, 80 प्रतिशत बच्चों का अता-पता नहीं

अपनों से बिछड़े अब कहां मिले

बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ का सरकार समर्थित नारा भी चुनावी जुमला साबित हो रहा है. देश के विभिन्न हिस्सों से नाबालिग बच्चियों को अगवा कर घरेलू नौकर, सस्ते वर्कर या सेक्स स्लैव बनाया जा रहा है. वहीं सरकारी अमला लव जेहाद, ऑपरेशन मजनूं जैसे कार्यक्रमों में मगन है. चाइल्ड ट्रैफिकिंग के बढ़ते खतरों पर सरकार नहीं चेती, तो यह देश की सबसे बड़ी समस्या बनने जा रही है.

चंदन राय

अक्टूबर 2016 का वाकया है. छत्तीसगढ़ में 15 साल की एक आदिवासी बच्ची अपने रिश्तेदार के यहां जाने के लिए ट्रेन पर चढ़ती है. हड़बड़ी में वह दिल्ली जाने वाली एक ट्रेन में बैठ जाती है. इस छोटी सी गलती की सजा कितनी भयावह हो सकती है, इसका अंदाजा लगाना भी मुश्किल है. हजरत निजामुद्दीन रेलवे स्टेशन पर उतरते ही उसे कुछ लोग अगवा कर लेते हैं, फिर बारी-बारी से उसके साथ दुष्कर्म करते हैं और जी-भर जाने पर 70 हजार रुपए में किसी और को बेच देते हैं. इस बीच जबरियन शादी से लेकर, दो बार बेचे जाने और फिर सेक्स वर्कर बनने तक का यह अंतहीन सिलसिला चलता ही रहता, यदि वह एक दिन इस यातना गृह से भागने का फैसला नहीं कर लेती. छत्तीसगढ़ में एक-दो नहीं, बल्कि 11 हजार ऐसे बच्चे हैं, जो पिछले तीन साल से लापता हैं.

अब छत्तीसगढ़ सरकार द्वारा चलाए जा रहे कन्या आश्रम के बारे में भी जान लेते हैं. छत्तीसगढ़ के कांकेर में आदर्श आदिवासी कन्या आश्रम है, जहां 300 आदिवासी छात्राएं रहती हैं. आश्रम से दो छात्राएं भारती उइके और लक्ष्मी मरकाम दो साल से लापता हैं. आदिवासी बच्चियों के रहने और पढ़ने के लिए सरकार ऐसे कई कन्या आश्रम चलाती है, लेकिन अब आदिवासी अपने बच्चियों को वहां पढ़ने के लिए नहीं भेजना चाहते हैं. एक और घटना पर नजर डालते हैं. 2016 में इलाहाबाद के करछना क्षेत्र में पुलिस को एक दुष्कर्म के आरोपी की तलाश थी. छापेमारी के दौरान उसके घर से छत्तीसगढ़ की छह आदिवासी लड़कियां मिलती हैं. पता चला कि आरोपी आर्केस्ट्रा के लिए छत्तीसगढ़, झारखंड से नाबालिग लड़कियों को मंगाता था.

कुछ दिनों पहले कांग्रेस की सांसद छाया वर्मा राज्यसभा में छत्तीसगढ़ से 11 हजार बच्चों के लापता होने की बात उठाती हैं. उन्होंने कहा कि आदिवासी अपनी बच्चियों को पढ़ाने के लिए अब इन कन्या आश्रमों में नहीं भेजना चाहते हैं. यहां बच्चियों के साथ दुष्कर्म की कई घटनाएं सामने आई हैं. इस पर राज्यसभा के उप सभापति पीजे कुरियन ने महिला एवं बाल कल्याण मंत्रालय को राज्य सरकार के समक्ष इस मुद्दे को उठाने के निर्देश दिए. उन्होंने कहा कि ऐसे मामलों में सख्त कार्रवाई की जानी चाहिए और अगर कन्या आश्रमों में बच्चियों के साथ दुष्कर्म जैसी घटनाएं हो रही हैं, तो इन संस्थानों को तुरंत बंद कर देना चाहिए.

यूनीसेफ की एक संस्था, यूनाइटेड नेशंस ऑफिस ऑफ ड्रग्स एंड क्राइम की एक रिपोर्ट के अनुसार पिछले तीन सालों में 11 हजार बच्चे और 10 हजार महिलाएं छत्तीसगढ़ से लापता हैं, जिनमें 80 प्रतिशत मामलों में कोई सुराग नहीं मिला है. 2012-14 में राजगढ़, सरगुजा-जशपुर कॉरीडोर से नाबालिग लड़कियों का व्यापार होता था. छत्तीसगढ़ में जशपुर, बिलासपुर, धमतरी, रायपुर, जांजीर और चंपा का इलाका चाइल्ड ट्रैफिकिंग के लिए बदनाम है. स्थानीय लोग बताते हैं कि इनमें से कुछ बच्चों को जबरन कुछ उग्रपंथी समूह भी अपने साथ ले जाते हैं. 36 गढ़ों का यह प्रदेश देश के सबसे गरीब राज्यों में से एक है. छत्तीसगढ़ में 47.9 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा से नीचे हैं. यहां के जशपुर जिले में 765 गांव हैं. यहां की आबादी करीब साढ़े सात लाख है, जिसमें 72 प्रतिशत एसटी-एसटी समुदाय से हैं. ये सभी सीमांत किसान हैं, जिनमें से अधिकतर खेतों में मजदूरी करते हैं और वन में उपजने वाले कंद-मूल बेचकर गुजर-बसर करते हैं. गरीबी की मार झेल रहे इस समुदाय को रोजगार का झांसा देकर बहलाने में प्लेसमेंट एजेंसियों को कोई परेशानी नहीं होती.

प्लेसमेंट एजेंसियां बना रहीं सेक्स स्लैब

चाइल्ड ट्रैफिकिंग की सबसे बड़ी वजह इन शहरों में छोटे-बड़े प्लेसमेंट एजेंसियों का कुकुरमुत्ते की तरह उग आना है. प्लेसमेंट एजेंसियां कुछ स्थानीय लोगों की मदद से आदिवासी लड़कियों पर नजर रखती हैं. ये स्थानीय लोग आदिवासी समाज से ही होते हैं, इसलिए लोग आसानी से उनके झांसे में आ जाते हैं. वे नाबालिग लड़कियों को रोजगार का प्रलोभन देकर मेट्रो शहर भेज देते हैं, जहां प्लेसमेंट एजेंसियों का हेड ऑफिस होता है. इस तरह लोकल एजेंट और प्लेसमेंट एजेंसियों के गठजोड़ से चाइल्ड ट्रैफिकिंग का धंधा इलाके में फल-फूल रहा है. जशपुर में डुलडुला ब्लॉक की 15 साल की मुस्कान (बदला हुआ नाम) बताती है कि उन्हें 2017 में एक लोकल प्लेसमेंट एजेंट ने रोजगार का झांसा देकर दिल्ली भेज दिया था. वहां कई साल तक उसे सेक्स स्लैव बनाकर रखा गया. उसने बताया कि घर की मालकिन हर रात उसके दोनों हाथ-पैर रस्सी से कसकर बांध देती थी. उसके बाद वह अपने पति को छेड़छाड़ व दुष्कर्म करने के लिए बुलाती थी. उसे जबरदस्ती पोर्न फिल्में दिखाई जाती थी. इस दौरान उसके शरीर से छेड़छाड़ के अलावा बेरहमी से मार-पीट भी की जाती थी. यूनीसेफ की रिपोर्ट में भी इसका जिक्र है कि बीहड़ आदिवासी इलाकों से मेट्रो शहरों में पहुंची बच्चियों को घरेलू नौकर या फिर सेक्स स्लैव बनाया जाता है. इन लड़कियों को ट्रेस करना नामुमकिन होता है, क्योंकि प्लेसमेंट एजेंसियां समय-समय पर अपना नाम, मोबाइल नंबर और लोकेशन बदलती रहती हैं.

एंटी ह्यूमन ट्रैफिकिंग स्क्वायड की एक सोशल एक्टिविस्ट दुर्गा बताती हैं कि लोग इन मामलों में पुलिस से ज्यादा सेल्फ हेल्प ग्रुप्स पर भरोसा करते हैं. इन ग्रुप्स में अधिकतर ऐसी महिलाएं होती हैं, जो कभी चाइल्ड ट्रैफिकिंग की शिकार हो चुकी होती हैं. इन परिस्थितियों को झेल चुकीं महिलाओं को पता होता है कि कैसे, कहां पर छापेमारी करनी है और किस तरह से बच्चियों को सुरक्षित बाहर निकालना है. ये स्थानीय लोग होते हैं, जिसे पूरी जानकारी देने में आदिवासी समाज के लोग नहीं हिचकते हैं. दुर्गा बताती हैं कि उन्होंने सेल्फ हेल्प ग्रुप की मदद से दिल्ली, मुंबई और हरियाणा से 38 बच्चियों को छुड़ाया है. ये लोग ग्रुप बनाकर आदिवासी लोगों के बीच जाती हैं और चाइल्ड ट्रैफिकिंग के खतरों और उनसे बचने के उपायों के बारे में बताती हैं. वे लोगों से चाइल्ड ट्रैफिकिंग की शिकार बच्चियों के बारे में भी जानकारी लेती हैं और फिर उन्हें बचाने के प्रयास में जुट जाती हैं. वे सबसे पहले परिवार के लोगों को एफआईआर दर्ज करने के लिए कहती हैं. यही कारण है कि राज्य प्रशासन ने 5 सालों में इन सेल्फ हेल्प ग्रुप की मदद से 919 बच्चियों को छुड़ाया है.

5 सालों में ह्यूमन ट्रैफिकिंग के सिर्फ 265 मामले दर्ज हुए थे, जिनमें 192 मामले चाइल्ड ट्रैफिकिंग के थे. इन पांच सालों में पुलिस ने 536 ट्रैफिकर्स को पकड़ा है. पुलिस के दावों से अलग यूनीसेफ की रिपोर्ट कहती है कि सिर्फ तीन सालों में 11 हजार चाइल्ड ट्रैफिकिंग के मामले सामने आए हैं. इन आंकड़ों के पीछे का सच क्या है? चाइल्ड ट्रैफिकिंग के अधिकतर मामलों में आदिवासी पुलिस में मामले दर्ज नहीं कराते, अगर कराना चाहते भी हैं तो पुलिस मामले दर्ज नहीं करती है. अगर पुलिस ने मामले दर्ज किए भी तो ट्रैफिकिंग के अधिकतर मामलों को मिसिंग के तहत दर्ज किया जाता है.

ट्रैफिकिंग है या मिसिंग, तय करेंगे हम

छत्तीसगढ़ में पदस्थापित सीआईडी के एक अधिकारी पीएन तिवारी बताते हैं कि 5 साल में सिर्फ ह्यूमन ट्रैफिकिंग के 265 मामले दर्ज हुए हैं, जिनमें 192 मामले चाइल्ड ट्रैफिकिंग के थे. इन पांच सालों में पुलिस ने 536 ट्रैफिकर्स को गिरफ्तार किया है. पुलिस के दावों से अलग यूनीसेफ की रिपोर्ट कहती है कि सिर्फ तीन साल में 11 हजार चाइल्ड ट्रैफिकिंग के मामले सामने आए हैं. इन आंकड़ों के पीछे का सच क्या है? चाइल्ड ट्रैफिकिंग के अधिकतर मामलों में आदिवासी पुलिस में मामले दर्ज नहीं कराते, अगर कराना चाहते भी हैं तो पुलिस मामले दर्ज नहीं करती है. अगर पुलिस ने मामले दर्ज किए भी तो ट्रैफिकिंग के अधिकतर मामलों को मिसिंग के तहत दर्ज किया जाता है. जशपुर के एसपी जीएस जायसवाल कहते हैं कि अब हम सुप्रीम कोर्ट के निर्देशों का सख्ती से पालन कर रहे हैं. यहां कई नेशनल हाईवे हैं, जिसके कारण आसानी से बच्चियों को यहां से पड़ोसी राज्यों झारखंड और ओडीशा में भेज दिया जाता है. हमने सभी गांवों में एक पुलिस कॉन्स्टेबल की नियुक्ति की है, जो गांव में घूम रहे असंदिग्ध व्यक्तियों पर नजर रखता है. साथ ही सभी मुखियाओं से भी कह दिया गया है कि वे गांव में किसी बाहरी व्यक्ति के आने पर फौरन सूचित करें. वे बताते हैं कि छत्तीसगढ़ 2013 में देश का पहला ऐसा राज्य बना है, जहां छत्तीसगढ़ प्राइवेट प्लेसमेंट एजेंसी रेगुलेशन एक्ट, 2013 पास किया गया है. इस एक्ट के अनुसार कोई भी प्लेसमेंट एजेंसी 18 साल से कम उम्र की लड़की को नियुक्त नहीं कर सकती है. लेकिन यूनीसेफ के एक अधिकारी बताते हैं कि ट्रैफिकिंग के अधिकतर मामलों को पुलिस माइग्रेशन मान लेती है और उस पर कोई कार्रवाई ही नहीं करती है. कोई एक्ट बना देने मात्र से ही ह्यूमन ट्रैफिकिंग के सभी मामलों से नहीं निपटा जा सकता है. हमें तकनीकी रूप से सक्षम कई ऐसे अधिकारी चाहिए, जो तीव्र गति से किसी मामले की जांच कर रेस्क्यू ऑपरेशन चला सकें. जशपुर की कलक्टर डॉ. प्रियंका शुक्ला कहती हैं कि हम बेटी जिंदाबाद नामक एक कार्यक्रम शुरू करने जा रहे हैं, जिसमें ट्रैफिकर्स से छुड़ाई गई बच्चियों के कौशल विकास पर जोर दिया जाएगा, ताकि वे अपने पैरों पर खड़े हो सकें. ■

अधिकारी कहते हैं, क्या हुआ अगर 750 बच्चे लापता हैं

हाल में राजस्थान हाईकोर्ट ने कोटा से गायब 750 बच्चों को लेकर राज्य सरकार को सख्त फटकार लगाई थी. राजस्थान में डाडावाड़ी, जवाहरनगर और गुमानपुर इलाके से दस साल में 745 बच्चे लापता हैं. कोटा निवासी प्रहलाद सिंह चड्डा ने इस मामले में हाईकोर्ट में पीआईएल डाली थी. आरटीआई से जानकारी मिली कि 2005-2015 के बीच 397 बच्चे गुमानपुरा, 411 डाडावाड़ी और 97 बच्चे जवाहरनगर से लापता हैं. इनमें से 411 नाबालिग बच्चियां हैं, जिनमें से 160 लड़कियां अपने घर लौट आई हैं, लेकिन 745 बच्चे अभी तक गायब हैं. चड्डा ने बताया कि उन्होंने पहले गायब बच्चों को लेकर पुलिस अधिकारियों से मुलाकात की थी, लेकिन उनकी तरफ से कोई संतोषजनक जवाब नहीं मिला. उनमें से एक अधिकारी ने तो यहां तक कहा कि लाखों की आबादी में अगर 750 बच्चे नहीं मिल रहे हैं, तो कौन सी आफत टूट पड़ी है? चड्डा को आशंका है कि इन गायब बच्चों के पीछे किसी ह्यूमन ट्रैफिकिंग गिरोह का हाथ हो सकता है. पुलिस गायब बच्चों की तलाश के लिए ऑपरेशन स्माइल और ऑपरेशन मुस्कान चला रही है. हालांकि पुलिस का कहना है कि 2016 में 180 नाबालिग लापता हुए हैं, जिनमें 113 लड़कियां हैं. इनमें से 90 लड़कियों व 55 लड़कों को पुलिस ने तलाश लिया है. ■

क्या ऐसे होगी समाज के अंधेरे कोनों की पहचान

समाज के उपेक्षित तबके पर अत्याचार को लेकर अगर किसी पुलिस अधिकारी की आत्मा जागती है, तो यह संवेदनशील सरकार उस अधिकारी को निलंबित करने में जरा भी नहीं हिचकती. इस अघोषित युद्ध में सरकार उद्योगपतियों के साथ है, तभी तो रायपुर सेंट्रल जेल की डिप्टी जेलर वर्षा डोंगरे की सच्चाई सरकार की आंखों में शूल सी चुभती है. ये वही डोंगरे हैं, जिन्होंने 2006 में लोकसेवा आयोग में जारी अनियमितता के खिलाफ छत्तीसगढ़ हाई कोर्ट में याचिका दायर कर अपनी नियुक्ति ली थी. वे फेसबुक पोस्ट में लिखती हैं, आदिवासी इलाकों में पूंजीवादी व्यवस्था को जबरन उन पर थोपा जा रहा है. गांव के गांव जलाए जा रहे हैं. आदिवासियों को उनकी जमीन से बाहर खदेड़ने के लिए उनकी महिलाओं, बच्चियों से दुष्कर्म किया जा रहा है. अगर किसी आदिवासी महिला पर नक्सल संगठनों से जुड़े होने का शक होता है, तो उसके कुचाग्रों को निचोड़कर इसकी जांच की जाती है. क्या यह सब नक्सलवाद को खत्म करने के नाम पर हो रहा है? आदिवासी भी चाहते हैं कि नक्सलवाद खत्म हो, लेकिन जिस तरह से उनकी मां-बहनों के साथ दुष्कर्म हो रहा है, उन्हें झूठे मुकदमों में गिरफ्तार किया जा रहा है, उनके घरों को जलाया जा रहा है, ऐसे में वे न्याय के लिए किसके पास जाएं? यही बात सीबीआई कह रही है, सुप्रीम कोर्ट कह रहा है और यही सच भी है. अगर आदिवासी इलाकों में सबकुछ सही है, तो फिर सरकार इतनी भयभीत क्यों है? मैंने देखा है कि 14 और 16 साल की बच्चियों को थानों में नंगा किया जाता है. उनकी बांहों और छातियों पर बिजली का शॉक दिया जाता है. इस दृष्य ने मुझे अंदर से हिला दिया है. सरकार को जगाने की सजा मिली वर्षा डोंगरे को. उन्हें निलंबित कर जांच बिठा दिया गया है. एक बड़े पुलिस अधिकारी कहते हैं कि इस बात की भी जांच की जा रही है कि कहीं उनके संबंध नक्सलियों से तो नहीं थे. ■

feedback@chauthiduniya.com

बैलट पेपर से चुनाव में क्या हर्ज है

www.kamalmorarka.com

कमल मोरारका

सुप्रीम कोर्ट को भी अपने आप को देखने की ज़रूरत है. जस्टिस चेलमेश्वर के इस बात में वजन है कि कॉलेजियम के अन्दर होने वाली बहस का विवरण तैयार किया जाना चाहिए, ताकि यह पता चल सके कि किसी जज की नियुक्ति कैसे होती है. जस्टिस कर्णन के सन्दर्भ में यहां जानना आवश्यक है कि वे कैसे हाई कोर्ट के जज बन गए, जब उनकी मानसिक स्थिति ठीक नहीं थी और अब उनकी मनोस्थिति की मेडिकल जांच करवाना चाहते हैं. कुल मिला कर मैं समझता हूं कि सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश को नेतृत्व अपने हाथ में ले लेना चाहिए और न्यायपालिका को दुरुस्त करना चाहिए, नहीं तो न्यायपालिका पर जनता का विश्वास कम हो जाएगा.

अपनी तरह के एक अनोखे मामले में कोलकाता हाई कोर्ट के एक न्यायाधीश ने सुप्रीम कोर्ट के निवर्तमान न्यायाधीशों को भ्रष्ट कहा और सुनवाई के बाद उन्हें दोषी करार दिया. इसके जवाब में सुप्रीम कोर्ट ने उन्हें जेल की सजा सुना दी. ये घटनाक्रम न्यायपालिका की गलत तस्वीर प्रस्तुत करते हैं. दरअसल वरिष्ठ वकील राम जेठमलानी ने कोलकाता हाई कोर्ट के न्यायाधीश जस्टिस कर्णन को पत्र लिखा कि बहुत हो गया, अब आपको इस तरह की चीजें बंद कर देनी चाहिए. बहरहाल इसमें खास बिंदु यह है कि अब जजों की नियुक्ति पर ध्यान देने की ज़रूरत है. जस्टिस कर्णन की यह शिकायत थी कि उनके साथ उचित व्यवहार नहीं हो रहा था, क्योंकि वे अनुसूचित जाति के जज थे. जो बातें उनकी तरफ से आ रही हैं वो एक दुखद तस्वीर पेश करती हैं. यदि हाई कोर्ट के जज को लगता है कि उनके साथ भेदभाव हो रहा है तो आम आदमी का क्या हाल होगा? जस्टिस कर्णन का सम्बन्ध चेन्नई से है और वे कोलकाता में रहते हैं. अब उनका स्थानांतरण कहीं और करने की बात चल रही है. मैं समझता हूं कि भारत के मुख्य न्यायाधीश को इस मामले पर कोई फैसला लेते वक़्त अधिक विवेकशील होना चाहिए. संजय किशन कौल, जिन्हें हाल में मद्रास हाई कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश के पद से प्रोन्नति देकर सुप्रीम कोर्ट का न्यायाधीश बना दिया गया, पर जस्टिस कर्णन ने गंभीर सवाल उठाए हैं. उन्होंने ऐसे कई उदाहरण दिए हैं, जिससे मिस्टर कौल की ईमानदारी सवालों के घेरे में आ जाती है. ये सारी चीज़ें सुप्रीम कोर्ट के लिए ठीक नहीं हैं. सुप्रीम कोर्ट को भी अपने आप को देखने की ज़रूरत है. जस्टिस चेलमेश्वर के इस बात में वजन है कि कॉलेजियम के अन्दर होने वाली बहस का विवरण तैयार किया जाना चाहिए, ताकि यह पता चल सके कि किसी जज की नियुक्ति कैसे होती है. जस्टिस कर्णन के सन्दर्भ में यहां जानना आवश्यक है कि वे कैसे हाई कोर्ट के जज बन गए, जब उनकी मानसिक स्थिति ठीक नहीं थी और अब उनकी मनोस्थिति की मेडिकल जांच करवाना चाहते हैं. कुल मिला कर मैं समझता हूं कि सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश को नेतृत्व अपने हाथ में ले लेना चाहिए और न्यायपालिका को दुरुस्त करना चाहिए, नहीं तो न्यायपालिका पर जनता का विश्वास कम हो जाएगा.

दूसरा सवाल ईवीएम का है. विपक्ष ने इस मुद्दे को नहीं उठाया, जिसकी वजह वह खुद बता सकता है. लेकिन सच्चाई यह है कि उत्तर प्रदेश चुनाव के नतीजों ने आम आदमी के मन में बड़ा संदेह पैदा किया है कि चुनाव साफ-सुथरे हुए हैं या नहीं. अब चाहे जिस कारण से भी हो, बैलट पेपर के साथ चुनाव करवाने में क्या बुराई है. दुनिया के अधिकतर देशों में बैलट पेपर के माध्यम से चुनाव होते हैं. ईवीएम या किसी अन्य तकनीक का सही इस्तेमाल भी हो सकता है और गलत इस्तेमाल भी हो सकता है. मैं समझता हूं चुनाव आयोग को यह घोषणा करनी चाहिए कि 2019 के लोकसभा चुनाव बैलट पेपर के माध्यम से होंगे, जैसे पहले हुआ करते थे. हो सकता है कि नतीजे एक दिन के बजाय दो दिन में घोषित हों, लेकिन इससे क्या फर्क पड़ता है. लोग नतीजों का इंतज़ार कर सकते हैं, लेकिन वे आश्वस्त रहेंगे कि चुनाव साफ-सुथरे हुए और उसमें कोई हेराफेरी या चोरी-चकारी नहीं हुई है. एकमात्र नेता जिसने इस मुद्दे को गंभीरता से उठाया है, लेकिन उनकी पार्टी बहुत छोटी है और केवल दिल्ली में सत्ता में है, इसलिए उनकी बात को गंभीरता से नहीं लिया जाएगा. दूसरे विपक्षी नेताओं को चुनाव आयोग के समक्ष उनका समर्थन करना चाहिए. अब जो हो गया वो हो गया, उसे लौटाया नहीं जा सकता, लेकिन 2019 का लोक सभा चुनाव बैलट पेपर के माध्यम से होना चाहिए. जहां तक उत्तर प्रदेश का सवाल है, तो यदि मायावती और मुलायम सिंह यादव (यानि बसपा और सपा) एक साथ आएं तो बेशक वे उत्तर प्रदेश में बैलट पेपर के माध्यम से नए चुनाव करवाने की बात कर सकते हैं. यदि उसके बाद भी भाजपा जीत जाती है, तो कोई बात नहीं. मुझे समझ में नहीं आता कि इसमें चुनाव आयोग और भाजपा को क्या आपत्ति हो सकती है. चुनाव आयोग की कोशिश साफ-सुथरे चुनाव करवाने की होती है और भाजपा को विश्वास है कि वो लोकप्रिय है, लिहाज़ा चुनावी प्रक्रिया की विश्वसनीयता को बहाल करने की जरूरत है.

ज्वलंत मामला कश्मीर का है. मैं समझता हूं कि हर बीतते दिन के साथ वहां स्थिति बद से बदतर होती जा रही है. मौजूदा सरकार के मुताबिक यह कानून-व्यवस्था की समस्या है, लिहाज़ा समाधान का कोई सवाल नहीं है. अलगाववादी गुस्से में हैं. वे जनमत संग्रह चाहते हैं. पाकिस्तान अपनी वजह से गुस्से में है. लेकिन सच्चाई यह है कि कश्मीर एक राजनैतिक मसला है, जिसका समाधान 1947 से लंबित है. दो-तीन बार हम समाधान के करीब पहुंचे भी. अटलबिहारी वाजपेयी के नेतृत्व वाली एनडीए ने कहा कि हम इसे हल करेंगे. अपने दस साल के कार्यकाल में मनमोहन सिंह ने भी वही रुख अपनाया. मुझे नहीं लगता कि हम एक बार फिर टकराव की भाषा का प्रयोग करें. बातचीत शुरू होनी चाहिए. भारत और पाकिस्तान को बातचीत करनी चाहिए. कश्मीर के अलगाववादियों का कोई एकमात्र नेता नहीं है. यदि भारत और पाकिस्तान के बीच अच्छे सम्बन्ध बन जाते हैं, तो मसले का हल निकल सकता है.

एक और मुद्दा चीन-पाकिस्तान आर्थिक कॉरिडोर (सीपीईसी) का है. सीपीईसी पर भारत में चीन के राजदूत ने एक दिलचस्प बयान दिया है. उन्होंने कहा है कि यह एक बड़ा मुद्दा है. यदि इसपर भारत को आपत्ति है (क्योंकि यह कश्मीर से होकर गुजरती है) तो हम इसे चीन-भारत-पाकिस्तान आर्थिक कॉरिडोर कह सकते हैं. यह बहुत महत्वपूर्ण प्रस्ताव है, जिसमें काफी संभावनाएं हैं. इन संभावनाओं की तलाश सरकार को उच्चतम स्तर पर करना चाहिए. यदि इसे अपनाया जाता है और पाकिस्तान इसपर राज़ी हो जाता है तो कश्मीर समस्या का समाधान निकाला जा सकता है. इसका व्यापक आधार यह होना चाहिए कि जिसके कब्जे में जो हिस्सा है, वो उसके पास बरक़रार रहे और इसी बुनियाद पर शांति का आह्वान किया जाए. दोनों तरफ के लोगों को आसानी से आवाजाही के लिए जो रियायतें दी जा सकती हैं, उनपर भी विचार किया जाना चाहिए. लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि कश्मीर समस्या का समाधान बंदूक से नहीं निकाला जा सकता है.■

feedback@chauthiduniya.com

इस्लामी क़ानून में दारुल अमन का सिद्धांत भारतीय उलेमा की देन है: नवेद हामिद

सोलह अल्पसंख्यक संस्थाओं के समूह और ऑल इंडिया मुस्लिम मजलिस-ए-मुशावरत के सातवें अध्यक्ष नवेद हामिद ने मौजूदा राजनैतिक हालात और उसके कारण फैलती अशांति पर गहरी चिंता जताई है. हम एक वेब पोर्टल में प्रकाशित उनके इंटरव्यू का मुख्य अंश अपने पाठकों के लिए प्रस्तुत कर रहे हैं.

प्रश्न: क्या आपको लगता है कि आज अल्पसंख्यकों के लिए माहौल लगातार प्रतिकूल बनता जा रहा है?

उत्तर: हमें लगता है कि मौजूदा सरकार एक पेपर जारी कर जनता को बताए कि मुसलमानों ने कब भारत विरोधी काम किया या भारत के हितों के खिलाफ काम किया. ये बेतुकी बातें हैं. मौजूदा नेतृत्व, जिसमें राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार अजीत डोभाल, प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और गृहमंत्री राजनाथ सिंह शामिल हैं, के पास आंतरिक सुरक्षा के बारे में सारी जानकारियां हैं. गृहमंत्री ने सार्वजनिक रूप से स्वीकार किया है कि भारतीय मुस्लिमों ने इस्लामिक स्टेट का कभी समर्थन नहीं किया है. लेकिन जब 20 नौजवानों ने आईएस के प्रचार से प्रभावित होकर कट्टरवाद अपनाया तो उनके माता-पिता ने अधिकारियों से संपर्क कर उन्हें सही रास्ते पर लाने के ज़िश अाग्रह किया. यह एक बेतुका आरोप है.

प्रश्न: आइए थोड़ा पीछे चलते हैं, भारतीय मुसलमानों पर पाकिस्तान समर्थन का आरोप लगता है. यह कितना सच है?

उत्तर: यह बहुत दिलचस्प मामला है. मैं मोदी सरकार से दरख़ास्त करूंगा कि वो भारत के ऐसे जासूसों की सूची तैयार करे, जिन्होंने 1947 से लेकर आज तक पाकिस्तान के लिए काम किया है. बहैसियत उप प्रधानमंत्री एलके अडवानी ने मदरसों को आतंक का अड्डा करार दिया था. जब संसद में उनके इस वक्तव्य पर सवाल उठाया गया तो उन्होंने कहा कि वे इस पर जल्द ही श्वेतपत्र लाएंगे, लेकिन ऐसा नहीं हुआ.

प्रश्न: गैर-भाजपा दलों द्वारा मुस्लिम तुष्टीकरण के आरोप के बारे में क्या कहेंगे?

उत्तर: पिछले 65 वर्षों में तथाकथित धर्मनिरपेक्ष पार्टियों ने जो बीज बोया, भाजपा अब वही फसल काट रही है. विडंबना यह है कि धर्मनिरपेक्ष दलों ने ख़ामोशी के साथ भारतीय लोकतंत्र को एक बहुसंख्यक लोकतंत्र में बदल दिया था. एक समुदाय जिसकी सार्वजनिक सेवाओं में भागीदारी 1947 में 30 प्रतिशत थी, 1951 में 29 प्रतिशत थी, जो अब घटकर लगभग 3 प्रतिशत रह गई है. 80 से अधिक मुस्लिम बहुल लोकसभा क्षेत्रों को अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षित कर दिया गया और उन क्षेत्रों में जहां अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति की आबादी अधिक थी सामान्य श्रेणी में रख दिया गया. (कुछ और उदाहरण देते हुए) तुष्टीकरण का आरोप सीधी-सादी, आम जनता को गुमराह करने के लिए और उस चीज़ को साबित करने के लिए लगाया गया है, जो वास्तव में है ही नहीं. मुसलमानों के खिलाफ पक्षपात का पहला पर्दाफाश सच्चर समिति ने किया. समिति ने पश्चिम बंगाल की वामपंथी सरकार के कार्यकाल में सरकारी नौकरियों में मुसलमानों के असाधारण रूप से कम प्रतिनिधित्व का हवाला दिया था. धर्मनिरपेक्ष दलों द्वारा मुस्लिम तुष्टीकरण पर हमें तीसरा श्वेतपत्र जारी करना चाहिए.

प्रश्न: तो इसका मतलब ये है कि इन दलों ने ज़मीनी स्तर पर लोगों के लिए बिना कुछ किए केवल बयान जारी किए हैं?

उत्तर: धर्मनिरपेक्ष दल नर्म हिन्दुत्ववादी नीति अपनाए हुए थे. मुसलमानों की छोड़ दीजिए, उन्होंने देश के धर्मनिरपेक्ष ताने-बाने को बचाने की भी कोशिश नहीं की. यह सब इंदिरा गांधी द्वारा शुरू किया गया था, जब उन्होंने करन सिंह को इंडिया गेट के नज़दीक बोट क्लब पर विराट हिन्दू सम्मलेन करने की अनुमति दी थी. ये सब वहीं से शुरू हुआ था और वहीं से चारों ओर फैला था.

प्रश्न: तो क्या भारत अब हिन्दू राष्ट्र बनने की राह पर जा रहा है?

उत्तर: दिल्ली की सत्ता पर क़ब्ज़ा जमाने के बाद मौजूदा सरकार मुसलमानों को सार्वजनिक जीवन के सभी क्षेत्रों से हटा देना चाहती है.

प्रश्न: यह कैसे संभव है?

उत्तर: उन्होंने राज्य चुनावों में मुसलमानों को टिकट देने से इनकार कर दिया. हिमाचल से लेकर आंध्रप्रदेश तक आपको लोकसभा का एक भी सांसद नहीं मिलेगा. केवल दो सांसद बिहार से हैं, जिनमें से एक कांग्रेस का है और दूसरा लोक जनशक्ति पार्टी का. वर्ष 2011 में मैंने तत्कालीन प्रधानमंत्री को चेताया था कि संसद में मुसलमानों का आंकड़ा इकाई में आ जाएगा और ये भारतीय लोकतंत्र के लिए सबसे दुखद दिन होगा. अब ये होना शुरू हो गया है. यदि आने वाले चुनावों में ऐसे ही हालात रहे तो मुसलमान लोकतांत्रिक प्रक्रिया में अपना विश्वास खो देंगे. यदि ऐसा हुआ तो यह न केवल भारतीय लोकतंत्र के लिए सबसे दुखद बात होगी, बल्कि एक राष्ट्र के तौर पर भारत की नाकामी को भी ज़ाहिर करेगी. इसके अंजाम की कल्पना भी नहीं की जा सकती है. यदि मुसलमान कानून बनाने की प्रक्रिया में शामिल नहीं होंगे तो इसका मतलब क्या होगा?

प्रश्न: क्या आपको उम्मीद की कोई किरण दिखाई दे रही है?

उत्तर: हम एक ऐसे दौर की तरफ जा रहे हैं, जहां इस बात की आशंका बढ़ रही है कि भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों के बीच टकराव में इजाफा होगा. नतीजतन देश में शांति व्यवस्था को खतरा पैदा हो जाएगा.

प्रश्न: हिन्दू राष्ट्र के समर्थक कह रहे हैं कि मुसलमान जहां बहुसंख्यक हैं, वहां वे इस्लामिक स्टेट की ओर बढ़ रहे हैं. इसपर आप क्या कहते हैं?

उत्तर: हो सकता है कि 100-200 लोग ऐसे हों जो इस्लामिक स्टेट का ख्वाब देख रहे हों. यह व्यावहारिक नहीं है और भारतीय सन्दर्भ में बेतुका ख्याल है. जब तथाकथित ज़िम्मेदार लोग सार्वजनिक रूप से हिन्दू राष्ट्र की बात कर रहे हैं वो यह समझ नहीं पा रहे हैं कि वे आग से खेल रहे हैं. राजनैतिक मंथन के इस दौर में भारत को यह समझना चाहिए कि भारतीय मुसलमानों के बहुमत ने जिन्ना के पाकिस्तान के विचार को निरस्त कर दिया था. ये ऐसे लोग थे जो गांधी, नेहरू, आजाद, मदनी के पीछे चट्टान की तरह खड़े रहे. उन्हें इस बात पर दृढ़ विश्वास था कि भारत सबका देश होगा.

आपको मालूम होगा कि कई सदियों तक इस्लामिक न्यायशास्त्र के छात्र राज्य के केवल दो तरह के सिद्धांत के बारे में जानते थे. इस्लामी राज्य और गैर-इस्लामी राज्य. भारतीय मुस्लिम उलेमाओं का इस्लामिक न्यायशास्त्र को यह एक भेंट है कि उन्होंने एक तीसरे राज्य, शांतिपूर्ण राज्य की परिकल्पना पेश की. इस विचार ने भारतीय मुसलमानों के एक बड़े तबके को प्रभावित किया. वे भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का हिस्सा बने और शांतिपूर्ण राज्य को अपना वतन बनाने का फैसला किया. उन्होंने जिन्ना के विभाजनकारी एजेंडे को रद्द कर दिया.

हमें यह समझने की ज़रूरत है कि इस अवधारणा ने मुसलमानों में गौरव का ऐसा क्षण पैदा किया कि वो भारत को एक मजबूत राष्ट्र बनाने के लिए पूर्ण उत्साह और वचनबद्धता के साथ अपन योगदान देने लगे. हिंदू राष्ट्र के समर्थक यह नहीं समझ पाते कि यह एक विभाजनकारी एजेंडा है. दरअसल मोटे तौर कहा जाए तो 21वीं सदी में जिन्ना की सियासत को सामने लाना है.

प्रश्न: आप की नज़र में इन सबसे चिंताजनक परिणाम क्या हो सकता है?

उत्तर: यह समझना ज़रूरी है कि राजनीतिक इस्लाम, मुस्लिम समुदाय को यह स्पष्ट निर्देश देता है कि इस्लामी राज्य में उनकी क्या जिम्मेदारियां हैं और इस्लाम विरोधी राज्य की क्या जिम्मेदारियां हैं. यदि भारत को हिंदू राष्ट्र घोषित किया जाता है, तो यह शांतिपूर्ण राज्य नहीं रहेगा. मुझे डर है कि बहुत से लोग राजनीतिक इस्लाम के मूल सिद्धांतों के सहारे ये जानने की कोशिश करेंगे कि वे वैसी स्थिति का मुकाबला कैसे करें. ऐसी स्थिति में वे आज़ाद होंगे कि कहीं दूसरी जगह चले जाएं या विरोधी राज्य का मुकाबला करें. आप आश्वस्त रहें कि मुसलमान न कहीं पलायन कर रहे हैं और न ही कोई देश उन्हें स्वीकार कर रहा है, पाकिस्तान सहित क्योंकि हमने पाकिस्तान और दो राष्ट्र के सिद्धांत के खिलाफ काम किया था. यह भी याद रखें कि यदि भारतीय मुस्लिमों ने जिन्ना को समर्थन दिया होता, तो दक्षिण एशिया की जनसांख्यिकी (डेमोग्राफी) अलग होती.■

साभार- दि सिटीजन

संतोष भारतीय

जब तोप मुक़ाबिल हो

वैचारिक बहस में शरीक हों, दुत्कारें नहीं

पहले हमारे देश में वैचारिक मंथन बहुत होता था, जिसे शास्त्रार्थ का नाम दिया गया. दो परस्पर विचाराधाराएं आमने-सामने आती थीं. वहां तलवारें नहीं उठतीं थीं, वहां बहिष्कार नहीं होता था. वहां बात होती थी और अपने-अपने तर्कों को बहुत विद्वत्ता के साथ, लोगों को गवाह बनाकर, रखा जाता था. बाद में वो वैचारिक बहस कहलाई, जिसमें अम्बेडकर, लोहिया, नेहरू, दीनदयाल उपाध्याय जैसे नाम सामने आए. किशन पटनायक, मधु लिमये, जॉर्ज फर्नांडीज इस वैचारिक बहस के बडे नाम हैं. लेकिन इनके बाद वैचारिक बहसें समाप्त हो गईं. बहस आस्था के नाम पर होने लगी. बहस राष्ट्र को आगे बढ़ाती है, लोगों के दिमाग को समृद्ध करती है. क्या ये संभव है कि वैचारिक बहस नए सिरे से शुरू हो सके. मैं ऐसे ही कुछ ज्वलंत मुद्दे आपके विचार और बहस के लिए रख रहा हूं. आप उसमें शरीक हों और अपने विचार हमारे पास भेजें. हम उन्हें 'चौथी दुनिया' में प्रकाशित करेंगे.

हमने श्री मधु लिमये के जन्मदिन पर 'आरएसएस क्या है' शीर्षक से उनका प्रसिद्ध लेख छापा. उसके अगले अंक में हमने 'आरएसएस क्या है', सवाल का संघ विचारक राकेश सिन्हा द्वारा दिया गया जवाब छापा. ये दोनों लेख सारे देश में बहुत चर्चित हुए. अब मैं चाहता हूं कि एक नई वैचारिक बहस की शुरुआत हो. अगर ये हो सका तो मैं मानूंगा की लोगों में वैचारिक वाद-विवाद का होना, हिंसक द्वंद्व से ज्यादा बेहतर है. हिंसा के द्वंद्व में विद्वान भी मरता है. हिंसा के द्वंद्व में गरीब भी मरता है.

गोडसे को लगा कि गांधी राष्ट्रभक्त नहीं हैं. गोडसे को ये भी लगा कि मैं ज्यादा राष्ट्रभक्त हूं. तो गोडसे ने गांधी को गोली से उड़ा दिया. ये है इनका राष्ट्रभक्ति पर फैसला करने का तरीका और ये है इनकी समझ. इसी समझ और तरीके से दूसरों की राष्ट्रभक्ति पर फैसला करने वाले लोग न्यायाधीश बने घूमते हैं. ये मूर्खता ही हिन्दुत्व की राजनीति का आधार है.

जिस राष्ट्र की ये भक्ति करते हैं, इनके उस राष्ट्र में देश की जनता नहीं है. इनके सपने के राष्ट्र में आदिवासी नहीं हैं, दलित नहीं हैं, मुसलमान नहीं हैं, ईसाई नहीं हैं. इनका राष्ट्र, कल्पना का राष्ट्र है, सचमुच का देश नहीं. इनसे कभी पूछिए कि आप मुसलमानों को इतनी गाली क्यों देते हैं, अगर आपके मन की कर दी जाए तो आप मुसलमानों के साथ क्या करेंगे? क्योंकि आप भारत से मुसलमानों के सफाई के नाम पर हजार दो हजार को ही मार पाते हो. भारत में तो करीब 20 करोड़ मुसलमान हैं. क्या करोगे इनके साथ? क्या आप सबको मारना चाहते हैं या सबको हिन्दू बनाना चाहते हैं या सबको भारत से भगाना चाहते हैं? क्यों नफरत करते हैं इनसे? करना क्या चाहते हैं? ये पूछे जाने पर संघी बगलें झांकने लगते हैं.

मेरे एक दोस्त ने एक बार एक संघी नेता से पूछा कि आप फिर से अखंड भारत बनाने की बात संघ की शाखा में करते हैं. अफगानिस्तान, बांग्लादेश, पाकिस्तान इन सबको मिलाकर अखंड भारत बनाना है, लेकिन ये सभी देश तो मुस्लिम बहुल हैं. अगर इन्हें भारत में मिलाया गया तो भारत में मुसलमान बहुमत में आ जाएंगे. अगर हम इन्हें हिन्दू बनाना चाहते हैं, तो इतनी बड़ी आबादी को हम थोड़े से हिन्दू कैसे बदल पाएंगे? इस पर ये संघी नेता आएं-बाएं करने लगे और कोई जवाब नहीं दे पाए.

हजारों साल से जिन लोगों ने इस भू-भाग के मूल निवासियों को दानव कहकर मारा, उन्हें हीन काम करने पर मजबूर किया, उन्हें शूद्र कहा और उनकी जमीन ली, यहां के 80 प्रतिशत शूद्र को जिन लोगों ने बेजमीन बना दिया, वे फिर हिन्दुत्व के रथ पर सवार होकर जमीनें हथियाने निकले हैं. पिछली बार इन्होंने इसे धर्म-युद्ध कहा था. इस बार इसे धर्म रक्षा कह रहे हैं. इन्हें ही पता चलता है कि राम कहां पर पैदा हुए. ये भी कि जो बाबर की मस्जिद है, उसी के नीचे पैदा हुए थे. औरतों की बराबरी, जाति का सवाल, आर्थिक असमानता, ऐसे सवालों को ये लोग चीनी माओवादियों का षड्यंत्र बताते हैं. बड़ी होशियारी से ये असली मुद्दों से ध्यान भटकाते हैं. जैसे ही लोग असली मुद्दों पर सवाल उठाते हैं, ये तुरंत दंगा करवा देते हैं. ऐसे तमाम लोग डरते हैं कि हजारों साल से बहुत जतन और तिकड़म कर के जो सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक सत्ता हाथ में आई थी, वह कहीं निकल न जाए.

ऐसे तमाम लोग डरते हैं कि हजारों साल से बहुत जतन और तिकड़म कर के जो सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक सत्ता हाथ में आई थी, वो कहीं निकल न जाए. इनसे देश को मुक्त कराए बिना भारत में अमन-चैन कैसे आएगा! देश से मोहब्बत करने वालों को, सांप्रदायिकतावाद करने वाले इन गिरोहों से देश को मुक्त करवाने की लड़ाई लड़नी ही पड़ेगी. हम ये समझ नहीं पाते कि जैसे ही सत्ता आती है, वैसे ही अत्याचार करने वालों का या लोगों को परेशान करने वाले ग्रुप का हौसला कैसे बढ़ जाता है. लोगों की परेशानी खत्म ही नहीं होती. समाजवादी पार्टी जब उत्तर प्रदेश में राज कर रही थी, तब कहा जाता था कि पुलिस थाना समाजवादी पार्टी का कार्यालय बन गया है और यही प्रचार भारतीय जनता पार्टी का मुख्य आधार रहा. जनता ने समाजवादी पार्टी की जगह भारतीय जनता पार्टी को सत्ता सौंप दी. लेकिन उत्तर प्रदेश में लोगों को तो छोड़ दें, पुलिस को परेशान करने का तरीका भी नहीं बदला. ऐसे बहुत सारे वीडियो सोशल मीडिया पर वायरल हो रहे हैं, जिनमें लोग पुलिस वालों को पीटते हुए दिखाई दे रहे हैं. थाने पर कब्जा करते दिखाई दे रहे हैं. यहां तक कि सहारनपुर के एसएसपी के घर को भी अपने कब्जे में लेकर तांडव करते हुए दिखाई दे रहे हैं. क्या हम ये मानें कि राजनीति के ऊपर दबंगई और गुंडई की मानसिकता हावी हो गई है. लोगों की परेशानियों को दूर करने का रास्ता कहीं बहुत पीछे छूट गया है. बिहार में पुलिस इतनी निरंकुश और बेशर्म हो गई है कि वहां एसएसपी के पूछने पर एसएचओ बेशर्मी से कह देता है कि नौ लाख लीटर शराब चूहे पी गए. दूसरा एसएचओ बेशर्मी से कह देता है कि ट्रांसफॉर्मर गंगा में गिर गया और उसे मछलियों ने खा लिया और बिहार की सरकार इस बात को स्वीकार लेती है. ये सवाल नीतीश कुमार से है कि क्या आपको नहीं लगता कि ये सारे तर्क आपकी साख को समाप्त करने की दिशा का निर्माण कर रहे हैं. नीतीश कुमार का किसी अपराधी ग्रुप से या अधिकारियों के उस ग्रुप से सम्बंध नहीं है, जो प्रशासन को बर्बाद करना चाहते हैं. लेकिन नीतीश कुमार की धमक या उनकी साख अचानक कमजोर पड़ने लगी है. इस तरह की खबरें आ रही हैं कि हरियाणा से शराब की ट्रकें चलती हैं और बिना रोक-टोक बिहार की सीमा में पहुंच जाती हैं. अगर बिहार में शराब खरीदनी हो, तो बिहार के बहुत सारे पुलिस थाने इस काम को बखूबी अंजाम दे रहे हैं. क्या हम ये मानें कि ब्लैक में शराब लेने का एक नया केन्द्र बन गया है. मुझे विश्वास नहीं होता, लेकिन ऐसे लोग मेरे दाएं-बाएं हैं जो ये कह रहे हैं कि आप कहें तो हम आपको वीडियो बनाकर दे दें, आप कहें तो हम आपको बातचीत रिकॉर्ड करके दे दें.

सवाल सिर्फ ये है कि न योगी आदित्यनाथ के ऊपर सवाल है, न नीतीश कुमार के ऊपर सवाल है. सवाल व्यवस्था के उस काले चेहरे का है, जो चेहरा उज्ज्वल चेहरों को बहुत जल्दी मलीन करने की कोशिश करता है और लोगों के मन में ये अविश्वास पैदा करता है कि जिन्हें उन्होंने बड़ी अपेक्षा के साथ वोट दिया था, वे भी उनकी अपेक्षा को पूरा करने में असमर्थ साबित हो रहे हैं. अब या तो कोई नीतीश कुमार या योगी आदित्यनाथ को इन घटनाओं के बारे में बताता नहीं या उनके आसपास भी एक ऐसा साया है, जो उनके पास सही खबरें पहुंचने नहीं देता. लेकिन ये कैसे माना जाए कि योगी आदित्यनाथ या नीतीश कुमार टीवी नहीं देखते या अखबार नहीं पढ़ते और उन खबरों को देखकर या पढ़कर सच्चाई नहीं निकाल पाते. अपेक्षा करनी चाहिए कि देश में वैचारिक बहस की शुरुआत होगी. ये भी अपेक्षा करनी चाहिए कि उत्तर भारत के दो प्रमुख राज्यों के मुख्यमंत्री, योगी आदित्यनाथ और नीतीश कुमार अपनी समझ के दरवाजे खोलकर, अपनी साख को पराभव के रास्ते से वापस लाकर, नई साख बनाने के रास्ते पर ले जाएंगे. आशा तो करनी ही चाहिए.■

editor@chauthiduniya.com

आर या पार

सरकार नहीं चाहती कि कश्मीर का सच बाहर आए

परंजय गुहा ठाकुरता

सरकार द्वारा कश्मीर में सोशल मीडिया को प्रतिबंधित करना सच्चाई बाहर आने के उसके डर को दिखाता है. कई मौके ऐसे आए हैं जब किसी सामग्री या सूचनाओं के संचार के किसी प्लेटफॉर्म को प्रतिबंधित किया गया है, ताकि गलत सूचनाओं का प्रसार नहीं हो सके. लेकिन यह एक ऐसा समय नहीं है. यह दिख रहा है कि कश्मीर में सोशल मीडिया पर जो प्रतिबंध लगाया गया है, उसका मकसद प्रदर्शनकारियों को आपस में बात करने और एकजुट होने से रोकना है. इसके अलावा सरकार को इस बात का भी डर है कि प्रदर्शन के वीडियो सामने आ सकते हैं. इनमें से कई वीडियो ऐसे हैं, जिनमें मानवाधिकारों का उल्लंघन होता दिखता है.

कश्मीर की पूरी एक पीढ़ी सरकार समर्थित हिंसा को देखते हुए बड़ी हुई है. ऐसे में सरकार का यह रुख उन्हें ये एहसास दिलाता है कि कश्मीर के लोग जिस तरह से भारत सरकार को देखते हैं, उसका मुकाबला करने के लिए भारत सरकार किसी हद तक जा सकती है. भारी सैन्य बल की तैनाती के साथ-साथ यह एक ऐसा आदेश है, जिसे कानून-व्यवस्था बनाए रखने के नाम पर थोपा गया है. इसमें यह कहा गया है कि कश्मीरियों को अपुष्ट और आपत्तिजनक सामग्री नहीं मिले, इसलिए ऐसा किया जा रहा है. सरकार इस तथ्य को नजरंदाज करने की कोशिश कर रही है कि पत्थरबाजी या विरोध-प्रदर्शन के वीडियो समाज विरोधी नहीं, बल्कि सरकार विरोधी हैं.

यह भी समझना चाहिए कि कश्मीर में सरकार के लिए अपुष्ट और आपत्तिजनक सामग्री क्या है? लोकसभा चुनावों के वक्त 9 अप्रैल को कुछ वीडियो वायरल हुए. इसमें यह दिखा कि गोलियों की आवाजों के बीच लोग चीख रहे हैं. इससे हमें पता चला कि लोगों का सुरक्षा बलों के साथ किस तरह से सामना होता है. इसमें से एक वीडियो 11 साल के एक लड़के ने फेसबुक पर लाइव किया था. वह वीडियो एक एंबुलेंस के अंदर का था, जिसमें वह अपने मृत भाई को लेकर जा रहा था. उसका भाई पुलिस हिरासत में था. दूसरा वीडियो 22 साल के एक लड़के ने डाला था. पत्थरबाजी के दौरान उसे सुरक्षाबलों की गोली लगी थी. युवा कश्मीरी इन वीडियो का इस्तेमाल सरकार के खिलाफ सबूत के तौर पर कर रहे हैं. लोगों की सबसे अधिक नजर कश्मीर के उस वीडियो पर गई,

सरकार शुरू में ही किसी सामग्री को गलत मानकर न तो प्रतिबंधित कर सकती है और न ही अपनी विचारधारा के हिसाब से किसी सामग्री की पुष्टि कर सकती है और बाकी को दरकिनार. अगर कोई सरकार वाकई गलत सूचनाओं के प्रसार को लेकर चिंतित है, तो उसे एक ऐसा ढांचा विकसित करना होगा, जिसके जरिए काम हो. यूरोपीय संघ ने फर्जी खबरों को रोकने के लिए यह काम किया है. अगर सरकार यह कहती है कि कश्मीर में विरोध-प्रदर्शन के वीडियो गलत हैं तो उसे बताना चाहिए कि इन वीडियो में क्या गलत है...

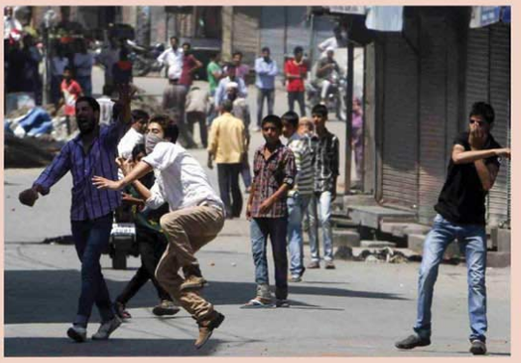

जिसमें सीआरपीएफ के एक जवान के साथ कुछ कश्मीरियों ने दुर्व्यवहार किया. सोशल मीडिया में भी संख्या बल आम कश्मीरियों पर भारी पड़ रहा है. पैसे देकर कई अकाउंट चलाए जा रहे हैं और आईटी सेल की भी मदद ली जा रही है. जिस वीडियो का जिक्र यहां किया गया है उसके बारे में सीआरपीएफ ने तुरंत कह दिया कि हमने जांच में वीडियो को सही पाया है. लेकिन सवाल यह है कि उन वीडियो की सत्यता की जांच इतनी तेजी से क्यों नहीं होती है, जिसमें सेना ज्यादती करते दिखती है?

कुछ लोगों ने यह भी कहा कि सीआरपीएफ जवान वाले वीडियो में कम से काम चार स्थानीय लोगों की आवाजें आ रही हैं, जिनमें वे लड़कों को कह रहे हैं कि जवान को कुछ मत करो. वीडियो की प्रकृति ऐसी है कि इसमें कई परतें रिकॉर्ड होती हैं, लेकिन इसके प्रसार की ऐसी संस्कृति विकसित हो गई है, जिसमें इसके विभिन्न परतों की ओर लोगों की नजर ही नहीं जाती.

पुष्टि के काम में भी कई पेंच हैं. दुनिया के कई हिस्सों में मुश्किल परिस्थितियों में सोशल मीडिया पर लाइव करने का इस्तेमाल लोगों ने किया है. वॉट्सएप वीडियो लोगों को ताजा लगता है, इसलिए वे उस पर यकीन कर लेते हैं. लोगों को वीडियो साझा करने की प्रेरणा इसलिए मिल रही है क्योंकि उन्हें लगता है कि मुख्यधारा की मीडिया में उनका पक्ष नहीं आएगा.

सरकार शुरू में ही किसी सामग्री को गलत मानकर न तो प्रतिबंधित कर सकती है और न ही अपनी विचारधारा के हिसाब से किसी सामग्री की पुष्टि कर सकती है और बाकी को दरकिनार. अगर कोई सरकार वाकई गलत सूचनाओं के प्रसार को लेकर चिंतित है, तो उसे एक ऐसा ढांचा विकसित करना होगा, जिसके जरिए काम हो. यूरोपीय संघ ने फर्जी खबरों को रोकने के लिए यह काम किया है. अगर सरकार यह कहती है कि कश्मीर में विरोध-प्रदर्शन के वीडियो गलत हैं तो उसे बताना चाहिए कि इन वीडियो में क्या गलत है. क्या वीडियो से छेड़छाड़ की गई है, क्या वे कहीं और के हैं या क्या वे पुराने हैं?

कई वायरल वीडियो की सत्यता की पुष्टि मुख्यधारा के समाचार संस्थानों द्वारा भी नहीं हो पाती है. इनमें कई बार वीडियो के स्रोत की दूरी और किसी ढांचे का नहीं होना भी जिम्मेदार होता है, लेकिन ऐसा अधिकतर बार बेसब्री और गैरजिम्मेदारी के कारण होता है. हालांकि, फर्जी खबरों की पहचान करने वाले कहते हैं कि फर्जी तत्वों को पहचानना तकनीकी तौर पर आसान है. इसे रिवर्स इमेज सर्च कहा जाता है. पश्चिम के प्रमुख मीडिया संस्थानों ने अपने यहां ऐसी व्यवस्था बनाई है, लेकिन किसी संदेश को साझा करने से पहले उसकी पुष्टि की व्यवस्था का मतलब यह है कि सरकारी कर्मचारी और नेता भी यही करने की कोशिश करेंगे. लेकिन ऐसा होता नहीं है. उदाहरण के तौर पर भारतीय जनता पार्टी के विधायक संगीत सोम द्वारा 2013 में मुजफ्फरनगर दंगों को भड़काने वाला फर्जी वीडियो जारी करने को देखा जा सकता है.

सरकार सोशल मीडिया की अस्पष्टता का हवाला देकर अपनी नाकामियों को नहीं छुपा सकती है. आईटी सेल और अन्य माध्यमों से कराए जा रहे प्रोपेगेंडा पर वह चुप्पी साधे हुए है. कश्मीरी जिस वीडियो को सच का सबूत बता रहे हैं, उन्हें प्रतिबंधित करके सरकार यह साबित कर रही है कि उसे सच्चाई जानने में कोई दिलचस्पी नहीं है.■

(लेखक इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली के संपादक हैं.)

feedback@chauthiduniya.com

यूपी में किसानों की क़र्ज़-माफ़ी: जड़ कहीं, मट्ठा कहीं और डाल रहे योगी

किसानों को मार रहा सूदख़ोर का क़र्ज़

आनंद सिंह/खूफी यायावर

उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनावों में जीत हासिल करने के लिए भाजपा और संघ परिवार ने हर चुनाव की तरह इस बार भी तमाम हथकंडे अपनाए. इनमें इस बार विकास के जुमले के साथ आर्थिक चाशनी भी शामिल थी. चुनाव प्रचार के दौरान नरेंद्र मोदी ने किसानों की कर्ज-माफी का वायदा करके कर्ज में डूबी विशाल किसान आबादी को अपने खेमे में करने की चाल चली. जैसा कि चुनाव के नतीजों ने दिखाया, मोदी अपनी इस चाल में क़ामयाब रहे. पूरे देश में व्याप्त कृषि संकट और उसकी वजह से किसानों के बेतहाशा बढ़े कर्ज को देखते हुए पिछले कुछ अरसे से उत्तर प्रदेश सहित कई राज्यों में किसानों की कर्ज-माफी के क़यास लगाए जा रहे थे. हालांकि बैंकों के शीर्ष अधिकारी और तमाम अर्थशास्त्री कर्ज-माफी से अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले बोझ के मद्देनज़र केंद्र व राज्य सरकारों को लगातार आगाह भी कर रहे थे, लेकिन उत्तर प्रदेश में योगी आदित्यनाथ के नेतृत्व में बनी भाजपा सरकार ने उन सुझावों को दरकिनार करते हुए अपनी पहली कैबिनेट बैठक में ही छोटे व सीमांत किसानों की कर्ज-माफी की घोषणा करते हुए 2019 के लोकसभा चुनावों के पहले किसानों में भाजपा के आधार को सुदृढ़ करने की अपनी मंशा साफ़ ज़ाहिर कर दी. इसमें कोई दो राय नहीं कि इस क़दम से किसानों के एक हिस्से को तात्कालिक राहत मिलेगी और इसलिए इन किसानों के बीच भाजपा का आधार मज़बूत होगा. लेकिन जो लोग यह मान बैठे हैं कि इस फ़ैसले से यूपी में खेती-किसानी का संकट कम हो जाएगा और छोटे किसानों के अच्छे दिन आ जाएंगे, वे मुग़ालते में हैं, क्योंकि पिछले कुछ दशकों से भारतीय कृषि एक गम्भीर संकट की शिकार है और किसानों का बढ़ता कर्ज उस संकट का लक्षण मात्र है. तमाम अर्थशास्त्री भी यह मानते हैं कि किसानों की कर्ज-माफी जैसे लोकलुभावन हथकंडों से भारतीय कृषि के संकट में कोई कमी नहीं आने वाली है. साथ ही यह आंकड़ों सहित दिखाया जा सकता है कि इस क़दम से किसानों को जो तात्कालिक राहत मिलेगी, वो भी छोटे किसानों के एक छोटे हिस्से तक ही सीमित रहेगी.

योगी आदित्यनाथ सरकार द्वारा लिए गए 36,359 करोड़ रुपए के कर्ज-माफी के फ़ैसले को मीडिया में इस तरह से प्रचारित किया गया मानो इससे सभी 2.15 करोड़ छोटे व सीमांत किसानों को लाभ होगा. लेकिन सच्चाई यह है कि सीमांत एवं छोटे किसानों के एक छोटे हिस्से को ही इसका लाभ मिलेगा. आइए आंकड़ों के ज़रिए इस सच्चाई का पता लगाएं. सरकारी आंकड़ों के अनुसार उत्तर प्रदेश में कुल 2.3 करोड़ किसान हैं, जिनमें 1.85 करोड़ सीमांत किसान (एक हेक्टेयर या 2.5 एकड़ से कम की जोत वाले), 30 लाख छोटे किसान (1-2 हेक्टेयर की जोत वाले) और शेष बड़े किसान (2 हेक्टेयर से अधिक जोत वाले) हैं. उत्तर प्रदेश सरकार की ख़ुद की घोषणा के अनुसार 2.15 करोड़ छोटे व सीमांत किसानों में से कर्ज माफी का लाभ पा सकने वाले किसानों की संख्या लगभग 86 लाख ही होगी. राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन (एनएसएसओ) के आंकड़ों के अनुसार उत्तर प्रदेश में कर्ज लेने वाले कुल छोटे व सीमांत किसानों के आधे से भी कम किसानों ने बैंकों से कर्ज लिया है. आधे से अधिक किसानों ने स्थानीय महाजन, सूदखोर, व्यापारी, मित्र, रिश्तेदार या बड़े किसानों वगैरह से कर्ज ले रखा है. ज़ाहिर है कि कर्ज में डूबे अधिकांश छोटे-सीमांत किसानों को योगी सरकार द्वारा लिए गए कर्ज-माफी के फ़ैसले से तात्कालिक राहत भी नहीं मिलेगी, क्योंकि वह वाणिज्यिक बैंकों और को-ऑपरेटिव बैंकों जैसे संस्थाओं द्वारा दिए गए संस्थागत कर्ज पर ही लागू होता है. यही नहीं, आंकड़े यह भी दिखाते हैं कि किसान की जोत जितनी ही छोटी होती है, उसके द्वारा संस्थागत स्रोतों द्वारा लिए जाने वाले कर्ज की सम्भावना उतनी ही कम होती है. एक एकड़ से कम जोत वाले किसानों में से केवल 28 प्रतिशत किसानों ने ही बैंकों से कर्ज ले रखा है. यानी 72 प्रतिशत ऐसे अति-सीमांत किसानों ने गैर-संस्थागत स्रोतों से कर्ज ले रखा है, जिन्हें कर्ज-माफी का कोई लाभ नहीं होने वाला है. अत: छोटे किसानों के सापेक्ष समृद्ध हिस्से को ही इस कर्ज-माफी से राहत पहुंचेगी.

छोटे किसानों के सापेक्ष समृद्ध हिस्से को कर्ज-माफी से जो राहत मिलेगी, वह भी तात्कालिक ही रहेगी और खेती का संकट भविष्य में उसे कर्ज के भंवरजाल की ओर और धकेलता रहेगा. दरअसल खेती-किसानी का मौजूदा संकट ढांचागत है. आज़ादी के बाद के दशकों में भारतीय कृषि में हुए पूंजीवादी हितों के निवेश के साथ ही गांवों में किसानों का विभेदीकरण तेज़ी से बढ़ा है और जोतों का आकार क्रमश: कम से कम होता गया है. 1970-71 की कृषि जनगणना के बाद से भारत में खेती की औसत जोत में लगातार गिरावट देखने को आई है. 2010-11 की ताज़ा कृषि जनगणना के मुताबिक़ भारत में जोतों का औसत आकार 1.15 हेक्टेयर रह गया है और सीमांत किसानों की संख्या 67 प्रतिशत व छोटे किसानों की संख्या लगभग 18 प्रतिशत है. यानी किसानों की कुल संख्या का 85 प्रतिशत छोटे व सीमांत किसान हैं. खाद, बीज, कीटनाशक व खेती के उपकरणों की क़ीमतें लगातार बढ़ने से खेती-बाड़ी की लागत में लगातार बढ़ोतरी हुई है. 1990 के दशक से नव-उदारवादी नीतियां लागू होने के बाद से कृषि का संकट गहरा होता गया है, क्योंकि खेती-बाड़ी में पूंजीवादी प्रतिस्पर्द्धा देश के भीतर तक ही नहीं सीमित है, बल्कि विश्व बाज़ार की हलचलें भी उसे प्रभावित करती हैं. ऐसे में बड़ी जोत वाले किसान, जो कृषि के आधुनिक उपकरणों से खेती करते हैं और समय पर फ़सल कटवाकर जल्द से जल्द मंडी तक फ़सल पहुंचाने की क्षमता रखते हैं, वे अगर कर्ज भी लेते हैं तो फ़ायदे में रहते हैं. छोटी जोत वाले किसान कर्ज लेकर बड़ी मुश्किल से जो कुछ भी उगा पाते हैं उसे भी समय पर मंडी में न पहुंचा पाने की वजह से उन्हें अपनी फ़सल की पर्याप्त क़ीमत नहीं मिल पाती. इस प्रकार मंडी में बड़े किसानों का ही दबदबा क़ायम हो जाता है और अधिकांश किसानों के लिए खेती-बाड़ी एक घाटे का सौदा बन जाती है. ऊपर से अगर मौसम दग़ा दे जाता है तो छोटे किसानों की समस्या और बढ़ जाती है. जिस किसान के पास जितनी कम ज़मीन रहती है, उसकी तकलीफ़ें उतनी ही अधिक होती हैं. सीमांत किसानों की हालत इतनी ख़राब होती जाती है कि अगर वे दूसरों के खेतों में मज़दूरी न करें, तो उनके परिवार का पेट पालना भी दूभर हो जाता है. गांवों में बड़ी संख्या ऐसे अर्द्ध-कृषकों की है जिनकी नियति देर-सबेर पूरी तरह से मजदूर में तब्दील हो जाने की है. इसमें क़तई आश्चर्य की बात नहीं है कि गांवों में हाल के दशकों में बड़े पैमाने पर छोटे किसान तबाह हुए हैं और यह प्रक्रिया समय बीतने के साथ बढ़ती गई है. हालत यहां तक आ पहुंची है कि सेंटर फ़ॉर द स्टडी ऑफ़ डेवलपिंग सोसाइटी के एक हालिया सर्वेक्षण के मुताबिक़ गांवों में 61 प्रतिशत किसान ऐसे हैं जो शहरों में नौकरी मिलने पर अपनी खेती-बाड़ी पूरी तरह से छोड़ने के लिए तैयार हैं. यह आंकड़ा चीख़-चीख़ कर भारतीय कृषि के संकट की कहानी बयान कर रहा है.

घटने के बजाय बढ़ रहा आत्महत्या का आंकड़ा

राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के आंकड़े बताते हैं कि वर्ष 2015 में कृषि सेक्टर से जुड़ी 12602 आत्महत्याओं में 8007 किसान थे और 4595 कृषि मज़दूर. साल 2014 में आत्महत्या करने वाले किसानों की संख्या 5650 और कृषि मजदूरों की 6710 थी. यानी कुल मिलाकर 12360 आत्महत्याएं. इन आंकड़ों के अनुसार किसानों की आत्महत्या के मामले में एक साल में जहां 42 फ़ीसदी की बढ़ोतरी हुई वहीं कृषि मज़दूरों की आत्महत्या की दर में 31.5 फ़ीसदी की कमी आई है. आत्महत्या करने वाले कुल किसान व कृषि मज़दूरों की संख्या 2014 के मुक़ाबले दो फ़ीसदी बढ़ गई है. किसानों व कृषि मज़दूरों को 2014 से अलग-अलग खातों में रखा जाने लगा है, इस पर लोगों का ध्यान जाना चाहिए. किसानों व कृषि मज़दूरों की आत्महत्याओं का सिलसिला लगातार जारी है और इसमें कुल मिलाकर दो प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई है.

2014 में भूरवामित्व के अनुसार किसानों को चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया. सीमान्त कृषक (1 हेक्टेयर से कम ज़मीन के मालिक), लघु कृषक (1 हेक्टेयर से ज़्यादा पर 2 हेक्टेयर से नीचे के मालिक), मध्यम किसान (2 हेक्टेयर से 10 हेक्टेयर के नीचे के मालिक) और बड़े किसान (10 हेक्टेयर से अधिक ज़मीन के मालिक). आत्महत्या करने वाले कुल किसानों में 28 प्रतिशत सीमांत कृषक व 45 प्रतिशत लघु कृषक थे जो कुल आत्महत्याओं का 73 प्रतिशत बनाते हैं. मात्र 2 प्रतिशत धनी किसानों ने ही आत्महत्या की. यानी, खेती करके सीमांत, छोटे किसान और निम्न मध्यम किसान बर्बाद होते जा रहे हैं. धनी किसानों और बड़ी कॉर्पोरेट फ़ार्मिंग की ताक़त के आगे वे टिक नहीं पा रहे हैं. पूरे देश में मुलायम, लालू, देवीलाल, चौटाला, चौधरी चरण जैसे नेताओं के नेतृत्व में चलते रहे क्षेत्रीय दल धनी कुलक किसानों, फ़ार्मरों, शोषकों के दल बने रहे जो अपने खेत पर मुनाफ़े को बढ़ाने के लिए शरीब खेत मज़दूरों के श्रम का जमकर नग्न शोषण करते रहे हैं और कर रहे हैं. एनसीआरबी की रपट बताती है कि जिन किसानों ने 2015 में कर्ज न चुका पाने के कारण ख़ुदकुशी की, उनमें से 80 फ़ीसदी किसानों ने बैंकों से कर्ज लिया था, न कि महाजनों से. जिन 3,000 किसानों ने 2015 में आत्महत्या की थी, उनमें से 2,474 ने बैंकों या किसी माइक्रो फ़ाइनेंस कम्पनी से कर्ज लिया था. कर्ज के कारण किसानों की आत्महत्या 2015 में लगभग तीन गुणा बढ़ी. ■

भारतीय कृषि के संकट का एक नतीजा गांवों में भूमिहीन किसानों की लगातार बढ़ती संख्या के रूप में सामने आ रहा है. 2001 की जनगणना में भारत में गांवों के भूमिहीन मज़दूरों की संख्या 10.67 करोड़ थी, जो 2011 तक आते-आते 14.43 पहुंच गई. इसमें लगभग 2 करोड़ भूमिहीन मज़दूर अकेले उत्तर प्रदेश से हैं. ग़ौरतलब है कि किसानों की कर्ज-माफी के शोर-गुल में इस विशाल निर्धन/श्रमिक वर्ग की आवाज़ दबा दी जाती है. इस भूमिहीन मज़दूर आबादी की भी अच्छी-ख़ासी संख्या कर्ज के बोझ तले दबी रहती है. लेकिन उनके कर्ज-माफी की बातें भूले-भटके भी नहीं की जाती. यही नहीं, अक्सर इस बात को दृष्टि-ओझल कर दिया जाता है कि किसानों की कर्ज-माफी से सरकार पर पड़ने वाला अतिरिक्त आर्थिक बोझ भी मुख्य रूप से गांवों और शहरों की श्रमिक आबादी और निम्न मध्यम वर्ग को ही उठाना पड़ता है. उत्तर प्रदेश में किसानों की कर्ज-माफी का बोझ भी मज़दूर वर्ग और निम्न मध्यम वर्ग पर ही पड़ने वाला है. ग़ौरतलब है कि केंद्र सरकार द्वारा कर्ज-माफी के लिए आर्थिक मदद करने से मना करने के बाद कर्ज-माफी के लिए मुद्रा जुटाने के लिए योगी सरकार ने किसान राहत बॉण्ड जारी करने का फ़ैसला किया है. ज़ाहिर है कि उत्तर प्रदेश सरकार के राजस्व के 8 प्रतिशत से भी अधिक क़ीमत के इन बॉण्डों की सूद सहित भरपाई मज़दूर वर्ग और निम्न मध्यम वर्ग को करनी पड़ेगी, क्योंकि इसके लिए जो अतिरिक्त कर लगाना होगा, उसका बोझ मुख्यत: इन्हीं पर पड़ेगा. उत्तर प्रदेश में कर्ज-माफी के बाद पंजाब और महाराष्ट्र जैसे संकटग्रस्त राज्यों में भी कर्ज-माफी की क़वायद तेज़ हो गई है. तमिलनाडु के उच्च न्यायालय ने भी राज्य के सभी किसानों के लिए कर्ज-माफी की योजना लागू करने का आदेश दिया है. कहने की ज़रूरत नहीं कि ऐसी योजनाओं से किसानों की ज़िन्दगी की तकलीफ़ें तो कम नहीं होने वाली, हां इनके फलस्वरूप आने वाले दिनों में मज़दूर वर्ग और मेहनतकश जनता के ऊपर महंगाई की मार ज़रूर तेज़ पड़ने वाली है. ■

feedback@chauthiduniya.com

लोग पूछ रहे सवाल : किस आधार पर दिया गया स्वच्छ शहर का ख़िताब?

सफ़ाई देखी या औक़ात!

तस्वीरें बताती हैं स्वच्छता सर्वेक्षण का सच... आप खुद देखिए, बाईं तरफ की तस्वीर लखनऊ की है और दाहिनी तरफ है वाराणसी. दोनों शहरों की स्वच्छता के बारे में लोगों को पता है. उन्हें यह समझ में नहीं आ रहा कि लखनऊ को 269वां और वाराणसी को 32वां स्थान कैसे मिला!

- स्वच्छता के किस मापदंड पर वाराणसी को मिल गया 30वां स्थान?
- किस मापदंड पर लखनऊ को नीचे कर दिया और पटना को ऊपर?
- बिहार शरीफ को कैसे मिला 147वां स्थान और लखनऊ को 269वां?

प्रभात रंजन दीन

जिस उत्तर प्रदेश ने विधानसभा चुनाव में भारतीय जनता पार्टी की प्रतिष्ठा बचाई, उस प्रदेश को मोदी सरकार के स्वच्छ शहर सर्वेक्षण ने कहीं का नहीं छोड़ा. देशभर के शहरों की स्वच्छता का सर्वेक्षण करने में लगी एजेंसियों पर रिश्वतखोरी के इल्जाम भी लगे और तमाम विवादों के प्रसंग सामने आए, और जब सर्वेक्षण की रिपोर्ट सार्वजनिक हुई तो उन आरोपों और विवादों पर मुहर लग गई. स्वच्छता का सर्वे करने वाली एजेंसी ने किस अंधत्व से स्वच्छता की जांच-परख की, यह इस बात से ही पता चलता है कि उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ को स्वच्छता की श्रेणी में 269वें स्थान पर रखा गया जबकि गंदगी के लिए मशहूर बिहार की राजधानी पटना को 262वें स्थान पर रखा गया. लखनऊ की बात छोड़िए, बिहार के एक जिले बिहारशरीफ को स्वच्छता में 147वां स्थान मिला, जबकि जानने वाले यह जानते हैं कि बिहारशरीफ की स्वच्छता और लखनऊ की स्वच्छता में कितना जमीन-आसमान का फर्क है. बनारस की गंदगी और अफरा-तफरी के बारे में कौन नहीं जानता, लेकिन केंद्र सरकार के स्वच्छता सर्वेक्षण में बनारस को 32वें स्थान पर रखा गया है. आम चर्चा है कि प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी का संसदीय क्षेत्र होने के कारण बनारस को यह स्थान मिला, भले ही शहर उतना स्वच्छ हो या न हो. राजनीतिक दृष्टिकोण से देखें तो स्वच्छता सर्वेक्षण में साफ-सफाई को कम और राजनीतिक-औकात को अधिक तरजीह दी गई और उसे ही मापदंड माना गया. लखनऊ को 269वां स्थान मिलने के बाद यूपी के लोग राजनाथ सिंह की राजनीतिक-औकात पर बात करने लगे हैं. लखनऊ राजनाथ सिंह का ही संसदीय क्षेत्र है. बिहार शरीफ बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार का क्षेत्र है, लिहाजा उस औकात से बिहार शरीफ को 147वां स्थान मिलना ही था.

पर्यावरण क्षेत्र में शोध करने वाले संगठन सेंटर फॉर साइंस एंड एनवॉयर्नमेंट (सीएसई) ने तो कहा भी है कि केंद्र सरकार द्वारा स्वच्छ शहर चुने जाने की प्रक्रिया ही मूल रूप से गलत है. सीएसई के मुताबिक स्वच्छता सर्वेक्षण में शीर्ष पर आए शहरों ने कचरा प्रबंधन के जिन तरीकों को अपनाया है, वे पर्यावरण के कतई अनुकूल नहीं हैं. सीएसई ने सर्वेक्षण प्रक्रिया पर गंभीर सवाल उठाए हैं और कहा है कि इसे तत्काल बदला जाना चाहिए. संगठन का कहना है कि तीन शीर्ष शहरों ने कचरा प्रबंधन के जिन तरीकों को अपनाया है वह लंबे समय तक पर्यावरण के अनुकूल नहीं है. विडंबना यह है कि जो शहर पर्यावरण के अनुकूल कचरा प्रबंधन के तरीकों का इस्तेमाल कर रहे हैं, उन्हें स्वच्छता सूची में बहुत नीचे स्थान दिया गया है. सीएसई के अनुसार स्वच्छता सर्वेक्षण के शीर्ष तीन स्वच्छ शहर, इंदौर, भोपाल और विशाखापत्तनम कचरा उठाकर सीधे मलवा स्थल (लैंडफिल) पर ले जाते हैं, जो पर्यावरण के कतई अनुकूल नहीं है. यानि, उक्त शहर म्यूनिसिपल सॉलिड वेस्ट (एमएसडब्लू) रूल- 2016 का पालन नहीं कर रहे हैं. उल्लेखनीय है कि शहरों की स्वच्छता को लेकर हुए सर्वेक्षण में मध्य प्रदेश के इंदौर को देश का सबसे साफ शहर बताया गया है. इसके बाद मध्य प्रदेश के भोपाल, आंध्र प्रदेश के विशाखापत्तनम और गुजरात के सूरत का नंबर है.

सर्वेक्षण के शीर्ष 50 शहरों में 31 शहर उक्त तीन राज्यों से हैं. इन सभी 31 शहरों में कचरे को सीधे ऊर्जा संयंत्रों में भेजा जा रहा है या फिर डम्पिंग के लिए लैंडफिल का उपयोग किया जा रहा है. जबकि घरेलू स्तर पर कचरे को अलग करने वाले और इसके दोबारा उपयोग के लिए काम करने वाले शहरों को सर्वेक्षण में खराब रैंकिंग दी गई है. केरल के अलप्पुझा शहर में कचरा प्रबंधन के विकेंद्रीकृत मॉडल का इस्तेमाल होता है. उसे सर्वेक्षण में 380वां स्थान दिया गया है. इसी तरह गोवा में पणजी शहर 90वें स्थान पर है, जिसने कचरा प्रबंधन के लिए सबसे बेहतर नीति अपना रखी है. अलप्पुझा और पणजी में कोई भी लैंडफिल साइट नहीं है. साथ ही इन शहरों में कचरे से ऊर्जा पैदा करने वाले संयंत्र भी नहीं लगे हैं. इन शहरों के ज्यादातर कचरे का इस्तेमाल कम्पोस्ट खाद या फिर बायोगैस बनाने में होता है. इसके अलावा प्लास्टिक, धातु और कागज आदि को रिसाइक्लिंग के लिए भेज दिया जाता है. ये शहर कचरे से पैसा भी बना रहे हैं, जबकि दूसरे शहर कचरे को इकट्ठा करने और लैंडफिल तक ले जाने के लिए करोड़ों रुपए खर्च कर रहे हैं, फिर भी इन शहरों को स्वच्छता सर्वेक्षण में बहुत नीचे स्थान मिला है.

2017 के स्वच्छता सर्वेक्षण के मुताबिक सफाई के मामले में उत्तर प्रदेश सबसे फिसड्डी साबित हुआ है. देश के 10 सबसे गंदे शहरों में पांच शहर यूपी के हैं. उत्तर प्रदेश का एक भी शहर शीर्ष 30 स्वच्छ शहरों में शामिल नहीं है. उत्तर प्रदेश में बनारस (वाराणसी) को सफाई के मामले में 32वें स्थान पर रखा गया तो यूपी की राजधानी लखनऊ को 269वां स्थान मिला. देश के 434 शहरों में कराए गए स्वच्छ भारत सर्वेक्षण के बाद केंद्र सरकार ने पिछले दिनों इसकी रिपोर्ट जारी की थी.

सफाई के मामले में सबसे खराब रिकॉर्ड वाले 10 शहरों में यूपी के पांच, बिहार और पंजाब के दो और महाराष्ट्र का एक शहर शामिल है. स्वच्छता सर्वेक्षण के तहत जारी कुल 434 शहरों की लिस्ट में उत्तर प्रदेश का गोंडा शहर सबसे गंदा शहर साबित हुआ. वहीं महाराष्ट्र का भुसावल 433वें पायेदान पर रहा. इसके बाद के क्रम में बिहार का बगहा, उत्तर प्रदेश का हरदोई, बिहार का कटिहार, उत्तर प्रदेश का बहराइच, पंजाब का मुक्तसर और अबोहर, उत्तर प्रदेश का शाहजहांपुर और खुर्जा देश के 10 सबसे गंदे शहरों में रखा गया. 434 शहरों की स्वच्छता-लिस्ट में उत्तर प्रदेश के 61 शहर शामिल हैं, लेकिन शीर्ष 30 में यूपी का कोई शहर नहीं है. वाराणसी 32वें स्थान पर है. उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ 269वें स्थान पर है. यूपी के दूसरे शहरों में अलीगढ़ 145, झांसी 166, कानपुर 175, रुड़की 218, सहारनपुर 245, जौनपुर 246, इलाहाबाद 247, अयोध्या 252, आगरा 263, उरई 273, बरेली 298, चंदौली 305, सुल्तानपुर 309, गोरखपुर 314, ललितपुर 320, मुरादाबाद 321, शामली 326, लोनी 331, अकबरपुर 333, इटावा 336, देवरिया 338, मेरठ 339, मुजफ्फरनगर 344, गाजियाबाद 351, मथुरा 352, मोदीनगर 360, बलिया 361, मऊनाथ भंजन 370, पीलीभीत 374, फिरोजाबाद 375, फर्रुखाबाद 377, मैनपुरी 379, मुगलसराय 382, फैजाबाद 383, बांदा 385, बस्ती 386, मिर्जापुर 389, अमरोहा 389, रायबरेली 394, आजमगढ़4 398, रामपुर 399, शिकोहाबाद 401, एटा 406, सीतापुर 407, 408 हाथरस, कासगंज 409, लखीमपुर 410, फतेहपुर 412, गाजीपुर 413, उन्नाव 417, बदायूं 426, बड़ौत 421, बुलंदशहर 423 और हापुड़ 424वें स्थान पर है.

स्वच्छता सर्वेक्षण की पारदर्शिता का नायाब उदाहरण यह है कि सर्वेक्षण में उत्तर प्रदेश के शहरों को नीचे का स्थान तो पकड़ा दिया गया, लेकिन केंद्र सरकार ने उत्तर प्रदेश के लोगों को यह नहीं बताया कि व्यक्तिगत घरेलू शौचालय के 11 लाख से ज्यादा आवेदन क्यों निरस्त कर दिए गए थे? स्वच्छता सर्वेक्षण का फिर क्या औचित्य रहा? यह सवाल प्रदेश के लोग उठा रहे हैं. स्वच्छता मिशन के तहत केंद्र के शहरी विकास मंत्रालय द्वारा बनवाए जा रहे शौचालयों के लिए वर्ष 2014 से लेकर अब तक उत्तर प्रदेश से कुल 25 लाख 52 हजार 744 आवेदन दिए गए, इनमें से 11 लाख पांच हजार 568 आवेदनों को निरस्त कर दिया गया. इन आवेदनों को निरस्त करने की कोई ठोस वजह भी नहीं बताई गई. स्वच्छता श्रेणी में नीचे धकेले गए यूपी के शहरों के लोग यह सवाल उठा रहे हैं कि जब शौचालय बनने की इजाजत ही नहीं दी जाएगी तो प्रदेश के शहर साफ-सुथरे शहरों की श्रेणी में कैसे आएंगे? स्वच्छता सर्वेक्षण की रिपोर्ट कहती है कि उत्तर प्रदेश में निर्माण कराए गए व्यक्तिगत घरेलू शौचालयों की संख्या मात्र 47.70 प्रतिशत है. ■

feedback@chauthiduniya.com

न देहरादून स्वच्छ, न नैनीताल साफ

शहरों की स्वच्छता जांचने के लिए किए गए सर्वेक्षण में उत्तराखंड का कोई शहर दो सौ तक की सूची में भी अपना स्थान नहीं बना पाया. इसे लेकर उत्तराखंड के लोगों में भी काफी क्षोभ है. सर्वेक्षण की रिपोर्ट आते ही उत्तराखंड सरकार ने राजधानी देहरादून समेत कई शहरों की सफाई और उसके सौंदर्यीकरण का काम तेज करने का फैसला किया. स्वच्छता सर्वे की रिपोर्ट के अनुसार उत्तराखंड की राजधानी देहरादून को 316वें स्थान पर रखा गया. इस सर्वेक्षण रिपोर्ट ने 'स्वच्छ दून - सुंदर दून' के नारे का सत्यानाश कर दिया. सर्वेक्षण में उत्तराखंड के छह शहरों को शामिल किया गया, जिनमें रुड़की को 218वां, हरिद्वार को 244वां, काशीपुर को 256वां, देहरादून को 316वां, नैनीताल को 330वां और हल्द्वानी को 395वां स्थान मिला है. ■

स्वच्छता में शीर्ष पर रहे 10 शहर

01.	इंदौर	(मध्य प्रदेश)
02.	भोपाल	(मध्य प्रदेश)
03.	विशाखापत्तनम	(आंध्र प्रदेश)
04.	सूरत	(गुजरात)
05.	मैसूर	(कर्नाटक)
06.	तिरुचिरापल्ली	(तमिलनाडु)
07.	नई दिल्ली	(दिल्ली न.पा. क्षेत्र)
08.	नवी मुंबई	(महाराष्ट्र)
09.	तिरुपति	(आंध्र प्रदेश)
10.	बड़ोदरा	(गुजरात)

ऊंचा रैंक देने के लिए सर्वेक्षण टीम ने मांगी घूस

शहरों की स्वच्छता के सर्वेक्षण में लगी एजेंसी जब घूस मांगेगी तो स्वाभाविक है कि सर्वेक्षण निष्पक्ष नहीं होगा और उसमें तमाम किस्म की व्याधियां घुसेंगी. एजेंसी ने बेहतर रैंक देने के लिए घूस मांगी. एजेंसी पकड़ी गई. उसकी एक ईकाई को सर्वेक्षण के काम से रोक दिया गया, लेकिन सर्वेक्षण चलता रहा. यह घटना पकड़े जाते ही केंद्र सरकार ने फौरन सर्वेक्षण का काम स्थगित कर उसे दूसरी एजेंसी को सौंपने और नए सिरे से सर्वेक्षण का काम कराने का निर्णय क्यों नहीं लिया? इस सवाल का केंद्र सरकार ने कोई जवाब नहीं दिया है, उल्टे केंद्र ने इस मसले पर चुप्पी ही साधे रखना बेहतर माना. इस मसले में जो भी जवाब आया वह कार्यदायी एजेंसी की तरफ से ही आया. केंद्रीय शहरी विकास मंत्रालय ने इस मामले में चुप्पी ही बनाए रखी.

अच्छी रैंकिंग देने के लिए घूस देने का मामला महाराष्ट्र के औरंगाबाद शहर में उजागर हुआ. सर्वेक्षण करने वाली टीम ने बेहतर रैंकिंग देने के लिए औरंगाबाद नगर निगम के अधिकारियों से रिश्वत मांगी थी. मामला उजागर होने के बाद क्वालिटी काउंसिल ऑफ इंडिया (क्यूसीआई) ने सर्वेक्षण करने वाली टीम को निलंबित कर दिया. आप यह जानते चलें कि केंद्रीय शहरी विकास मंत्रालय ने स्वच्छ भारत मिशन की प्रगति का व्यापक सर्वेक्षण करने और साफ-सफाई के आधार पर शहरों की रैंकिंग का जिम्मा क्यूसीआई को दी दे रखा था. घूस मांगे जाने की घटना की आधिकारिक पुष्टि हुई कि औरंगाबाद नगर निगम के अधिकारियों ने रिश्वत मांगने वाली टीम को पकड़ा और उन्हें बाकायदा पुलिस के हवाले किया. सर्वेक्षण में लगाई गई टीम मूडी इंटरनेशनल (इंटरटेक) से आई थी, जो 44 देशों में सर्वेक्षण का काम कर रही है. स्वच्छता मानकों की जांच के लिए क्यूसीआई ने अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त चार निरीक्षण निकायों को सर्वेक्षण का जिम्मा सौंपा था. लेकिन सर्वेक्षण की निष्पक्षता और पारदर्शिता गंभीर आरोपों में फंस गई. क्यूसीआई ने आधिकारिक तौर पर यह जरूर कहा कि मूडी इंटरनेशनल (इंटरटेक) को सर्वेक्षण से अलग कर दिया गया और जहां पर भी विवादास्पद टीम ने सर्वे किया, उन सभी जगहों की जांच के लिए एक आंतरिक समिति गठित की गई. लेकिन इन औपचारिकताओं से आम नागरिकों के उन सवालों का जवाब नहीं मिल पाया कि बेहतर रैंकिंग देने के लिए अन्य शहरों के नगर निगमों से घूस नहीं लिया गया, इसकी क्या गारंटी है? ■

स्वच्छता सर्वेक्षण का एक और अंधेरगर्द-सच... बाईं तरफ बिहारशरीफ है, जिसे स्वच्छता सर्वेक्षण में 147वां स्थान दिया गया, लखनऊ से 122 सीढ़ी ऊपर. दाईं तरफ पटना है, जिसे सफाई की कसौटी पर 262वां स्थान दिया गया, लखनऊ से सात सीढ़ी ऊपर... है न दुखद किंतु हास्यास्पद!

बिहार के चूहे बने शराबी

पुलिसकर्मी ही लगा रहे शराबबंदी अभियान को पलीता

सरोज सिंह

शराबबंदी को लेकर दुनियाभर में वाहवाही लूटने वाले नीतीश कुमार लगता है बिहार के चूहों से हार गए. इनके सुशासन का डर चूहों को नहीं हो रहा है. जब से बिहार में शराबबंदी लागू हुई है, सूबे के चूहे नौ लाख लीटर शराब गटक चुके हैं. ये दावा हमारा नहीं, बल्कि बिहार पुलिस के प्रारंभिक आकंड़े ये हैरतअंगेज खुलासा कर रहे हैं. बताया जा रहा है कि बिहार में पूर्ण शराबबंदी लागू होने के बाद पुलिस द्वारा जब्त किए गए लाखों लीटर देसी-विदेशी शराब थानों के मालखानों से गायब हैं. थानों का कहना है कि शराब की अधिकतर बोतलें मालखानों तक पहुंचने से पहले ही टूट गईं और उनमें रखी शराब नष्ट हो गई. शराब की जो बोतलें थानों के मालखानों तक सुरक्षित पहुंचीं, उन्हें मालखानों में उधम मचाने वाले चूहों ने गटक लिया. थानों के मालखानों से गायब हो रही शराब की बोतलों का अब राज्य पुलिस मुख्यालय हिसाब लेगा.

पटना के एसएसपी मनु महाराज ने तो अपने जिले के सभी थानों में तैनात पुलिस अधिकारियों व कर्मियों का ब्रेथ एनलाइजिंग टेस्ट कराने का फैसला ले लिया है. पुलिस के वरिष्ठ अधिकारियों को शक है कि कहीं थानों के मालखाने में रखी शराब पुलिस वाले तो नहीं गटक रहे हैं. ये भी फैसला हुआ है कि थानों के मालखानों में जब्त करके रखी गई देसी विदेशी शराब का ऑडिट होगा. जब्त शराब की सुरक्षा न कर पाने वाले थानेदारों और मालखानों के प्रभारी पुलिस अधिकारियों पर भी कार्रवाई की गाज गिर सकती है. पुलिस मुख्यालय के सूत्र बताते हैं कि विगत मार्च में मुख्यालय ने राज्य के सभी 40 पुलिस जिलों के एसपी से थानों के मालखानों में रखी गई शराब की बोतलों के संबंध में जानकारी मांगी थी. हालांकि, इस संबंध में कई जिलों ने अबतक मुख्यालय को जानकारी उपलब्ध नहीं कराई है. जिन जिलों ने ये जानकारी दी भी है, उसमें बताया गया कि शराब की अधिकतर बोतलें तो मालखानों तक पहुंचने से पहले ही नष्ट हो गईं. जो बोतलें मालखानों तक सुरक्षित पहुंचीं, उन्हें मालखानों के चूहों ने गटक लिया. जिलों से मिली इस तरह की जानकारी के बाद अब राज्य पुलिस मुख्यालय ने राज्य के सभी 1053 थानों के मालखानों का ऑडिट कराने का फैसला लिया है. गौरतलब है कि पिछले 13 महीनों के दौरान पुलिस ने राज्य भर से 9.15 लाख लीटर देसी-विदेशी शराब जब्त किया है. इनमें 3 लाख, 10 हजार, 492 लीटर देसी तथा 5 लाख, 67 हजार, 857 लीटर विदेशी शराब शामिल है. लेकिन इनमें अधिकतर शराब या तो नष्ट हो चुकी है या फिर इसे मालखानों के चूहे हजम कर गए हैं. उत्पाद विभाग ने इसी अवधि में 56 हजार, 229 लीटर देसी तथा एक लाख, 15 हजार, 100 लीटर विदेशी शराब जब्त की है.

शराबबंदी के एक साल

जब शराबबंदी कानून लागू हुआ, तो इस मामले को ले कर जो विभाग सबके निशाने पर था, वो है पुलिस महकमा. एक तरफ जहां तमाम विरोधी राजनीतिक दल पुलिस को अथाह अधिकार दिए जाने को ले कर खफा थे, वहीं दूसरी तरफ पुलिस वाले भी कड़े कानूनी प्रावधान से डरे सहमे थे. खुद नीतीश कुमार ने 14 अप्रैल 2016 को कह दिया कि अगर आप कानून लागू नहीं कर सकते, तो नौकरी छोड़ दें या सस्पेंड होने के लिए तैयार रहें. इतना ही नहीं, कानून लागू करने में कोताही के आरोप में महज चार महीने में 11 थानेदार सस्पेंड कर दिए गए. इधर हालात को देखते हुए अनेक पुलिस वालों ने स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति की इच्छा भी जता दी थी. अब जबकि कानून लागू हुए एक वर्ष बीत गए हैं, तो अब भी जिस महकमें पर सबसे ज्यादा हमले हो रहे हैं, वो पुलिस महकमा ही है. एक आम धारणा बन गई है कि राज्य में शराब की समानांतर बिक्री में पुलिस बराबर की गुनाहगार है. आरोप यहां तक लग रहे हैं कि पुलिस पैसे ले कर शराब माफियाओं के अवैध कारोबार को चलने दे रही है. पिछले महीने ही पटना के एसएसपी मनु महाराज को गुप्त सूचना मिली कि बेऊर थाने की मिली भगत से शराब की बिक्री धड़ल्ले से चल रही है.

घरों में ख़ुशियां लौटीं लेकिन...

इर्शादुल हक

अप्रैल महीने में पूर्ण शराबबंदी कानून लागू हुए एक साल पूरा हो चुका है. तमाम चौक चौराहों, गलियों और बाजारों से शराबखाने गायब हो चुके हैं. जहां शराब की दुकानें थीं, वहां के शटर या तो गिर चुके हैं या वहां सुथा के दूध उत्पाद या फिर दूसरी चीजें बिकने लगी हैं. पटना समेत तमाम शहरों-बाजारों के जिन नुक्कड़ों पर मौजूद शराबखानों के बाहर शाम ढलते ही मोटरसाइकिलों व कारों का हुजूम लगा जाता था, देखते-देखते सब गायब हो गया. हालत ये हो गई कि अगर कोई बाहरी शौकीन इन नुक्कड़ों पर अचानक चला जाए, तो उसे यकीन नहीं होगा कि वो इसी नुक्कड़ पर है, जहां कभी मय की महफिल सजा करती थी. प्रशासनिक स्तर पर पुलिस चुस्त-दुरुस्त हो गई. जिन शराबियों के चेहरे पर नशे का सुरूर होता था, वे चेहरे दहशतजदा रहने लगे. रात के अंधेरे में उन गलियों में भी शांति का आलम छा गया, जहां पियक्कड़ों के लड़खड़ाते कदमों और नशे में धुत आवाजों से शरीफों में दहशत छा जाती थी. लेकिन क्या सचमुच बिहार रातोंरात इतना बदल गया? इस सवाल का एक शब्द में सीधा जवाब न तो हां है और न ही नहीं. 4 अप्रैल 2016, जिस दिन पाबंदी लगी तब से 4 अप्रैल 2017 के बीच के अखबारों के कतरनों को पलटिए और गिनती कीजिए, तो पता चलता है कि राज्य में इन 365 दिनों में कम से कम 800 बार शराब की खेपें पकड़ी गईं. यानि औसत हर दिन दो. अंदाजा लगाइए कि नहीं पकड़े जाने वाले खेपों की क्या संख्या हो सकती है. 9 हजार से ज्यादा लोग नशे के चलते, शराब रखने के चलते या शराब की बिक्री करने के इल्जाम में हिरासत में लिए गए. शराब के आदी लोगों ने या तो शराब और महफूज जगहों की तलाश में बिहार की सरहदों को पार करना शुरू कर दिया या इन तक शराब की बोतलें ऑन डिमांड पहुंचने लगीं.

नाम गुप्त रखे जाने की शर्त पर शराब के शौकीन एक बड़े नेता ने चौथी दुनिया को बताया 'जितनी चाहिए उतनी शराब मिलती है, अब तो बुकान जाने की जरूरत भी नहीं पड़ती, घर तक शराब पहुंच जाती है.' एक तरफ ये सच्चाई है, वहीं दूसरी तरफ शराब के नशे में धुत हर वर्ग के लोग गिरफ्तार होते रहे हैं. इनमें डॉक्टर, इंजीनियर, नौकरशाह और यहां तक कि पुलिस वाले भी शामिल हैं. बिहार में सभी सीमावर्ती राज्यों जैसे, उत्तर प्रदेश, झारखंड, पश्चिम बंगाल और यहां तक कि नेपाल से भी शराब पहुंच रहा है. अवैध घोषित किए जा चुके इस कारोबार ने पिछले एक साल में काले कारोबारियों की एक नई फौज तैयार कर दी है. ये अवैध कारोबारी मोटरसाइकिलों से शराब कैरियर की भूमिका निभाने लगे हैं. पुलिस के हत्थे चढ़े एक कैरियर ने बताया था कि वो अपनी जेब में दस हजार रुपए ले कर चला करता था. जहां भी पकड़े जाने का खतरा बनता, बिना गिने वो दस हजार का बंडल थमाता और आगे बढ़ जाता. जहां तक नशे के आदियों की बात है, तो शराबबंदी के इस दौर में पियक्कड़ों का एक ऐसा ग्रुप भी सामने आया है, जो सप्ताहांत में पड़ोसी राज्य झारखंड, यूपी, पश्चिम बंगाल या फिर नेपाल की सैर पर निकल जाता है. ऐसे लोग अपना गला तर करके दूसरे दिन शराबमुक्त बिहार की भीड़ का हिस्सा बन जाते हैं.

इस शराबबंदी का आर्थिक पक्ष भी महत्वपूर्ण है. पिछले वित्त वर्ष में शराबबंदी से राज्य सरकार को पांच हजार करोड़ के राजस्व की प्राप्ति हुई थी. इससे पहले चार हजार करोड़ रुपए मिले थे. शराबबंदी पर चर्चा के दौरान नीतीश कुमार की आलोचना करते हुए ये सवाल भी उठाया जाता था कि बिहार जैसे गरीब राज्य में चार-पांच हजार करोड़ रुपये की कमी की भरपाई कैसे होगी. इसका सीधा असर राज्य के विकास पर पड़ेगा. नीतीश ने इन सवालों का जवाब ठीक एक साल बाद 24 अप्रैल को विधानसभा में विशेष सत्र के दौरान दिया. उन्होंने कहा कि शराब से बचे हुए पैसों का इस्तेमाल लोगों ने सिलाई मशीन, प्लास्टिक और इलेक्ट्रॉनिक साजो सामान पर किया है. इससे पहले वे बताते रहे हैं कि शराबबंदी के बाद से ब्राडेड मिठाइयों की बिक्री में भारी इजाफा हुआ है और लोग बच्चों की पढ़ाई पर भी खर्च करने लगे हैं. कुल मिला कर राजस्व संग्रह पर कोई खास असर नहीं पड़ा है. गौरतलब है कि राज्य सरकार ने पिछले वित्त वर्ष में पेट्रोलियम उत्पादों पर एक रुपए का अतिरिक्त कर लगा कर भी इस कमी की भरपाई करने की कोशिश की थी. शराबबंदी के बाद बिहार में रोड एक्सिडेंट में भी कमी आई है. साथ ही, बात-बात पर नशे में होने वाली हिंसा व हत्या और घरेलू झगड़ों के आंकड़ों में भी कमी देखने को मिली है. ऐसे तमाम आंकड़ों को नीतीश सरकार ने तथ्यों के आधार पर पेश किया है. राज्य सरकार शराबबंदी के बाद के हालात पर एक अध्ययन रिपोर्ट भी तैयार कर रही है.

कुल मिला कर, कहा जा सकता है कि अवैध शराब कारोबार की कुछ घटनाओं से इतर बिहार में शराबबंदी का सकारात्मक असर देखने को मिल रहा है. हालांकि इसमें भी संदेह नहीं कि शराबबंदी पर प्रशासनिक पकड़ अगर ढीली हुई, तो शराबबंदी का कानून हाथी का दांत ही साबित होगा. इस नजर से देखें, तो प्रति दिन राज्य के अलग अलग क्षेत्रों से शराब की खेप का पकड़ा जाना इस बात की गवाही है कि प्रशासन की चाबुक चल रही है. ■

feedback@chauthiduniya.com

इस शिकायत पर मनु महाराज ने कार्रवाई की और मामले को सही पाया. नतीजा ये हुआ कि पूरे थाने के तमाम पुलिसकर्मियों समेत थानेदार को लाइन हाजिर कर दिया गया. कुछ अफसरों को सस्पेंड भी किया गया. अब तक पूरे राज्य में 100 से ज्यादा पुलिसकर्मी इस मामले में सरकारी कार्रवाई के शिकार हो चुके हैं. कुल मिला कर राज्य में शराबबंदी के कानून की सफलता के लिए अगर सरकार की तारीफ हो रही है, तो वहीं शराब के समानांतर अवैध कारोबार पर पूरे प्रशासनिक तंत्र को निशाना भी बनाया जा रहा है. इधर एक सनसनीखेज मामले में बिहार पुलिस मेंस एसोसिएशन के अध्यक्ष निर्मल सिंह को गिरफ्तार कर लिया गया है. मुख्यमंत्री नीतीश कुमार को भी इस बात की जानकारी है कि कुछ पुलिसकर्मी इनके शराबबंदी के अभियान को पलीता लगा रहे हैं. इसलिए उन्होंने सख्त चेतावनी दी है कि अभी भी वक्त हैं, सुधर जाएं नहीं तो कड़ी से कड़ी कार्रवाई के लिए तैयार रहें.■

feedback@chauthiduniya.com

www.vastuvihar.org
वास्तु विहार®
एक विश्वस्तरीय टाउनशिप
AN ISO : 9001 : 2008 : 14001 : 18001 : 2007 COMPANY

बिहार, झारखंड, बंगाल, उड़ीसा एवं पूर्वी उत्तर प्रदेश के 63 शहरों में 117 आवासीय परियोजनाओं की श्रृंखला
Call : 95340 95340

मनोज तिवारी

बिहार विद्यापीठ: मर रहा है गांधी का सपना

आज ये संस्थान अपनी दुर्दशा पर रो रहा है. न शिक्षक हैं, न छात्र हैं, फिर भी चल रहा है. एक समय में गांधी ने खादी और चरखे का संस्थागत आंदोलन आरंभ किया था. आज यहां करघा कबाड़ में चला गया है. तेल-घानी कमरे में कैद है. खंडहरनुमा पुराने भवन हैं और बाकी गांधी जी की यादें हैं. मार्च 1921 तक करीब 500 असहयोगी छात्रों ने बिहार विद्यापीठ के अधीन परीक्षा देने के लिए नामांकन कराया था और 20-25 हजार छात्र बिहार विद्यापीठ से संबद्ध संस्थाओं में शिक्षा ग्रहण कर रहे थे. लेकिन आज विश्वविद्यालयी पढ़ाई के नाम पर यहां कुछ भी नहीं है.

कुमार कृष्णन

गांधी के विचारों और सपनों को अब तक आई सभी सरकारों ने अपने लिए भुनाया है, मगर उनके सपनों के भारत को वे पीछे छोड़ते चले गए. ये कहना है, सर्व सेवा संघ के प्रकाशन के संयोजक रहे, राष्ट्रीय युवा संवाद अभियान के राष्ट्रीय संयोजक अशोक भारत का. यदि हम हालात का विश्लेषण करते हैं, तो पाते हैं कि उनकी बातों में दम है. यदि यह सही न होता, तो बिहार विद्यापीठ यानी गांधी के सपनों का विद्यापीठ, मजहरुल हक की त्याग भूमि, डॉ. राजेंद्र प्रसाद की कर्म भूमि, आजादी के दीवानों की चिंतन भूमि और केंद्र भूमि की ये स्थिति न होती. हम बात कर रहे हैं उस बिहार विद्यापीठ की जिसकी स्थापना महात्मा गांधी ने की थी. जब अंग्रेजों के खिलाफ उन्होंने असहयोग आंदोलन (1920-22) छेड़ा और अंग्रेजी शिक्षा व्यवस्था का विरोध किया, तो उनके आह्वान पर छात्रों ने स्कूल-कॉलेजों का बहिष्कार कर दिया. इन छात्रों को भारतीय पद्धति में शिक्षा दिलाने के लिए गांधी जी ने देश में तीन विद्यापीठ की स्थापना की- काशी विद्यापीठ, गुजरात विद्यापीठ और बिहार विद्यापीठ. काशी विद्यापीठ और गुजरात विद्यापीठ तो आज भी बेहतरीन शिक्षा के गढ़ बने हुए हैं, लेकिन बिहार विद्यापीठ सिर्फ नाम का रह गया है. बिहार विद्यापीठ की स्थापना 1921 में हुई. इसके लिए महात्मा गांधी ने झरिया के गुजराती व्यवसायी से चंदा लिया. दो महिलाओं ने तो अपना सारा गहना दे दिया था. वहां से चंदे का 66 हजार रुपए लेकर गांधी जी पटना आए थे. उसके बाद स्वतंत्रता सेनानी ब्रजकिशोर प्रसाद, मौलाना मजहरुल हक, प्रथम राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद और महात्मा गांधी ने मिलकर बिहार विद्यापीठ की स्थापना की. 6 फरवरी 1921 को महात्मा गांधी, कस्तूरबा गांधी और मोहम्मद अली के साथ पटना पहुंचे और विद्यापीठ का विधिवत उद्घाटन किया. इस विद्यापीठ में जो पाठ्यक्रम अपनाया गया, वो अंग्रेज़ों द्वारा विश्वविद्यालयों में अपनाई गई नीतियों से काफी अलग था. महात्मा गांधी के मौलाना मजहरूल हक को बिहार विद्यापीठ का प्रथम कुलपति और ब्रज किशोर प्रसाद को उप-कुलपति बनाया. इससे संबद्ध राष्ट्रीय कॉलेज के प्रिंसिपल बने थे डॉ. राजेंद्र प्रसाद. जिस जमीन पर बिहार विद्यापीठ आबाद है, वो मौलाना मज़हरूल हक़ ने दी थी. गांधी जी की कोशिशों के बदौलत एक ज़माने में यह विद्यापीठ तालीम का मशहूर केन्द्र बनकर उभरा था, लेकिन प्रशासन की लापरवाही और उपेक्षा ने यहां की तस्वीर ही बदल डाली है.

आज ये संस्थान अपनी दुर्दशा पर रो रहा है. न शिक्षक हैं, न छात्र हैं, फिर भी चल रहा है. एक समय में गांधी ने खादी और चरखे का संस्थागत आंदोलन आरंभ किया था. आज यहां करघा कबाड़ में चला गया है. तेल-घानी कमरे में कैद है. खंडहरनुमा पुराने भवन हैं और बाकी गांधी जी की यादें हैं. मार्च 1921 तक करीब 500 असहयोगी छात्रों ने बिहार विद्यापीठ के अधीन परीक्षा देने के लिए नामांकन कराया था और 20-25 हजार छात्र बिहार विद्यापीठ से संबद्ध संस्थाओं में शिक्षा ग्रहण कर रहे थे. लेकिन आज विश्वविद्यालयी पढ़ाई के नाम पर यहां कुछ भी नहीं है. इस बार राज्य सरकार ने शिक्षा विभाग को चम्पारण सत्याग्रह शताब्दी समारोह का नोडल विभाग बनाया है. चम्पारण सत्याग्रह का शोर तो बहुत है, लेकिन जमीनी स्तर पर जो काम किए जाने चाहिए, उस दिशा में ठोस पहल का अभाव है. सरकारी उपेक्षाओं का दंश झेल रहे बिहार विद्यापीठ के पास आमदनी का कोई खास जरिया नहीं है. 35 एकड़ में फैले विद्यापीठ में करीब दो-ढाई सौ आम के पेड़ हैं. ये आम के पेड़ विद्यापीठ की आमदनी का जरिया है. हर साल दीघा मालदह के इन बगीचों की निलामी होती है और इससे जो राशि मिलती है, उससे विद्यापीठ के कर्मचारियों का वेतन और मेंटनेंस कार्य होता है. इस साल इस बगीचे की निलामी 4 लाख 51 हजार में हुई है. इसके अलावा विद्यापीठ के कुछ कमरों को किराये पर भी लगाया गया है. इससे भी कुछ राशि मिलती हैं. विद्यापीठ की 35 एकड़ जमीन पर भू-माफियाओं की नजर है. भूमि हथियाने के मामले में कई बड़े नाम सामने आ चुके हैं. अभी भी जमीन का विवाद चल रहा है. दूसरी तरफ, विद्यापीठ प्रबंधन के दुलमुल रवैये से स्थिति और खराब होती जा रही है. विद्यापीठ कैंपस में करीब 60 परिवार रहते हैं और इनमें से करीब 60 फीसदी लोग अवैध तरीके से रह रहे हैं. लेकिन इस ओर किसी का ध्यान नहीं है. कुछ लोग तो अवैध तरीके से कई कमरों को अपने कब्जे में रखे हुए हैं, लेकिन प्रबंधन चुप्पी साधे हुए है. किराया देकर कैंपस में रहने वाले कुछ लोगों का कहना है कि प्रबंधन को सिर्फ बगीचों की निलामी और किराये से मतलब रह गया है, न मेंटनेंस कराते हैं न कोई सुविधा देते हैं. बाढ़ के समय में बेड तक डूब गए, मगर विद्यापीठ प्रबंधन हाथ पर हाथ धरे बैठा रहा. लगभग सारे मकान जर्जर हो गए हैं. किसी भी दिन बड़ा हादसा हो सकता है, लेकिन इस ओर किसी का ध्यान नहीं है.

बिहार विधान परिषद के सभापति अवधेश नारायण सिंह ने पटना स्थित बिहार विद्यापीठ की 32 एकड़ जमीन को कुछ लोगों द्वारा फर्जी तरीके से बेच देने और जालसाजी कर दाखिल खारिज करा लेने से संबंधित मामले की जांच के लिए विशेष समिति का पुनर्गठन किया है. जदयू के राजकिशोर सिंह कुशवाहा समिति के अध्यक्ष और केदारनाथ पांडेय और डॉ. राम वचन राय सदस्य बनाए गए हैं. प्रदेश कांग्रेस मुख्यालय सदाकत आश्रम के निकट विद्यापीठ की जमीन को फर्जी तरीके बेचने और इसका दाखिल खारिज कराने का मामला परिषद में उठने पर कांग्रेस के अशोक चौधरी की अध्यक्षता में विशेष जांच समिति बनी थी. परिषद सभापति के कक्ष में समिति की बैठक भी हुई, लेकिन जांच की कार्रवाई आगे बढ़ने से पहले ही अशोक चौधरी शिक्षामंत्री बन गए और अन्य कई सदस्यों का कार्यकाल पूरा हो गया था. बिहार विद्यापीठ की जर्जर हालत पर बिहार विद्यापीठ की मंत्री और राजेंद्र बाबू की पोती तारा सिन्हा कहती हैं कि राजेंद्र बाबू के दिल्ली जाने के बाद यहां जो शिथिलता आई, वो बढ़ती ही गई. धीरे-धीरे छात्र कम होते गए, पाठ्यक्रम बंद होते गए और आज ये स्थिति आ गई है. विद्यापीठ के सचिव डॉ. राणा अवधेश सिंह का कहना है कि केंद्र सरकार ने राष्ट्रपति भवन की अनुशंसा पर बिहार विद्यापीठ को 2009-10 में 10 करोड़ की राशि दी थी. वही राशि आज आधार बनी हुई है. उससे जो सूद आता है, उससे विद्यापीठ का काम चल रहा है. केंद्र सरकार के अलावा कहीं से कोई अनुदान नहीं मिला. बिना पैसे के कोई काम कैसे आगे बढ़ सकता है. हालांकि जल्द ही हमलोग बीएड कोर्स शुरू करवाने जा रहे हैं. इसके लिए 2014 में भवन बन कर तैयार हो गया. कोर्स की संबद्धता को लेकर प्रक्रिया चल रही है. इसके अलावा रोजगारपरक शिक्षा को लेकर भी हमलोगों की योजना है. जल्द ही इस दिशा में भी तेजी से काम होगा. चम्पारण सत्याग्रह शताब्दी समारोह के एक कार्यक्रम में बिहार विद्यापीठ पहुंचे राज्यपाल रामनाथ कोविंद ने इसे गांधी जी के सपने के मुताबिक विश्वविद्यालय बनाने की दिशा में काम करने की बात कही. उन्होंने अप्रत्यक्ष रूप से माना भी कि ऐतिहासिक बिहार विद्यापीठ की सरकारी तौर पर अनदेखी की गई है. उन्होंने कहा कि इसका विकास अपेक्षित रूप से नहीं हो पाया.■

feedback@chauthiduniya.com

सरकार पर भारी पड़े नौकरशाह

इर्शादुल हक

अप्रैल 2017 के अंतिम सप्ताह में बिहार सरकार को बेबस और मजबूर हो कर अपने दो आईपीएस अफसरों के खिलाफ विभागीय कार्रवाई रोकनी पड़ी. सरकार की ये बेबसी न सिर्फ आम लोगों के लिए चौंकाने वाली थी, बल्कि खुद सरकार के लिए भारी चिंता के साथ एक हद तक फजीहत का कारण भी थी. दरअसल, ये मामला दो आईपीएस अफसरों पूर्व डीजीपी नारायण मिश्रा और अमिताभ कुमार दास से जुड़ा है.

गौरतलब है कि 2004-05 के दौरान नारायण मिश्रा बिहार के डीजीपी हुआ करते थे. नारायण मिश्रा के डीजीपी रहते ही 2005 में निगरानी विभाग ने उनपर आय से अधिक सम्पत्ति मामले में केस दर्ज किया. एक डीजीपी स्तर के कार्यरत अधिकारी के खिलाफ दर्ज हुआ भ्रष्टाचार का ये मामला सुर्खियों में आ गया. फरवरी 2007 में भ्रष्टाचार के विभिन्न मामलों के आधार पर मिश्रा को निलंबित भी कर दिया गया जबकि अगले चार महीने बाद यानी जून 2007 में उन्हें रिटायर होना था. हालांकि रिटायरमेंट के कुछ दिन पहले राज्य सरकार ने उनका निलंबन वापस ले लिया. इस मामले में उनके आलीशान मकान को भी जब्त कर लिया गया था. नारायण मिश्रा पहले अधिकारी थे, जिनके घर को जब्त किया गया. तब सरकार ने एक कानून भी बनाया था कि भ्रष्ट अफसरों के मकान को जब्त करके उसमें स्कूल खोला जाएगा. मिश्रा जब विधिवत रिटायर हो गए, तो उन्होंने अपने कानूनी अधिकार का जम कर इस्तेमाल किया. केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधीकरण (कैट) से ले कर पटना उच्च न्यायाल और यहां तक कि सुप्रीम कोर्ट तक लड़ाई लड़ी. नतीजतन, केंद्र सरकार ने मिश्रा के खिलाफ विभागीय कार्रवाई की अनुमति नहीं दी. इस आधार पर सुप्रीम कोर्ट ने राज्य सरकार द्वारा उनके खिलाफ की जाने वाली किसी भी कार्रवाई को रोकने का आदेश दे दिया. इस आदेश के बाद राज्य सरकार ने एक संकल्प जारी किया, जिसमें मिश्रा के खिलाफ विभागीय कार्रवाई को रोकने के फैसले पर अंतिम मुहर लगा दी गई.

जिस दिन बिहार सरकार ने पूर्व डीजीपी नारायण मिश्रा के खिलाफ विभागीय कार्रवाई समाप्त करने का संकल्प जारी किया, उसी दिन एक अन्य आईपीएस अधिकारी अमिताभ दास के खिलाफ चल रही विभागीय कार्रवाई को खत्म करने

का भी संकल्प जारी किया गया. हालांकि अमिताभ दास का मामला नारायण मिश्रा से अलग था. अमिताभ दास अभी नागरिक सुरक्षा के एसपी हैं. 1994 बैच के इस आईपीएस अफसर पर 2006 में एक महिला ने लगातार आठ साल तक यौन शोषण करने और फिर शादी से मुकर जाने का आरोप लगाया था. महिला ने इस संबंध में एक चिट्ठी मुख्यमंत्री नीतीश कुमार को लिखी थी. मुख्यमंत्री ने इस आरोप को काफी गंभीरता से लिया था और जांच के लिए तत्काल कदम उठाने का आदेश जारी कर दिया. आईपीएस अफसर प्रीता वर्मा को इस मामले की जांच सौंपी गई. काफी छानबीन के बाद भी इस मामले में अमिताभ के खिलाफ कोई सबूत नहीं मिला और फिर प्रीता वर्मा ने उन्हें आरोपमुक्त करने की अनुशंसा कर दी. इसके बाद सरकार ने एक दूसरे अधिकारी को इस मामले की जांच सौंपी. 1984 बैच के आईपीएस अधिकारी केशव ने जांच शुरू की, लेकिन वो भी सबूत जुटाने में नाकाम रहे. दो-दो जांचों में आरोप सिद्ध नहीं होने के बावजूद सरकार के रसूखदार लोगों ने अमिताभ के खिलाफ विभागीय कार्रवाई की अनुसंशा कर दी. सरकार के इस रवैये से आजिज अमिताभ ने कैट की पटना बेंच का दरवाजा खटखटाया. कैट ने इस मामले की जांच शुरू की, लेकिन जांच के दौरान आरोप लगाने वाली महिला कभी कैट में सुनवाई के लिए हाजिर ही नहीं हुई. नतीजतन, कैट ने सरकार को आदेश दिया कि अमिताभ के खिलाफ चल रही विभागीय कार्रवाई स्थगित कर दी जाय. लेकिन कुछ बड़े हाकिमों को कैट का आदेश नगावर लगा और मामला हाई कोर्ट पहुंचा दिया गया. अमिताभ ने यह लड़ाई हाई कोट में न सिर्फ लड़ी बल्कि जीती भी. इसके बाद राज्य सरकार ने हाई कोर्ट के फैसले को सुप्रीम कोर्ट में चुनौती दे डाली. अमिताभ कहते हैं कि इसके लिए कुछ लोगों ने काफी शातिराना चाल चली और उन्हें अंधेरे में रखा गया. हालांकि इसके बाद भी अमिताभ ने हार नहीं मानी, उन्होंने अपनी लड़ाई सुप्रीम कोर्ट में भी जारी रखी और अंतत: जीत हासिल की.

इसके बाद सरकार को मजबूरन एक संकल्प जारी कर अमिताभ दास के खिलाफ विभागीय कार्रवाई समाप्त करने का ऐलान करना पड़ा.इस पूरी लड़ाई में अमिताभ को 11 साल लगाने पड़े. इस दौरान उनको कोई प्रोमोशन तक नहीं मिला. गौरतलब है कि अमिताभ जब रेल एसपी थे, तो उन्होंने एक घोटाले को उजागर किया था. उस मामले में कुछ रसूखदार लोगों के दामन पर छींटे पड़े थे. अमिताभ बताते हैं कि उन्हें उसी का नतीजा भुगतना पड़ा.■

feedback@chauthiduniya.com

तपती गर्मी और लू से बचें

ariskon Pharma Pvt.Ltd.
An ISO 9001 : 2008 Certified Co.

डॉ. डी.के. यादव जो मधेपुरा के अनुभवी चिकित्सकों में से एक हैं ने अपने निजी क्लीनिक संजीवीनी से बातचीत की और लोगों को गर्मी में लू से बचने के लिए सलाह दिया। बातचीत के क्रम में डॉ. यादव ने बताया कि बिहार के साथ साथ देश के कई हिस्से में गर्मी का पारा सामान्य से अधिक चल रहा है। लू लगने और इसके कारणों और उपचार पर बातचीत की- लू और ताप घात क्या है ? - इस गर्मी के प्रकोप मे लू से कोई प्रभावित हो सकता है परन्तू बच्चे, गर्भवती महिलायें धूप में व दोपहर मे कार्यरत श्रमिक, यात्री, खिलाड़ी व ठण्डी जगयायु मे रहने वाले व्यक्ति (ए.सी. में रहने वाला व्यक्ति) सबसे अधिक प्रभावित होते है। लक्षण:- शरीर मे लवण एव पानी अपर्याप्त होने पर अचानक ठंड से गर्म वातावरण मे आने से यह लक्षण दिखते हैं- 1. सिर का भारीपन एवं सिरदर्द। 2.अधिक प्यास लगना एवं शरीर मे भारीपन के साथ थकावट। 3. जी मचलना, सिर चकराना व शरीर का तापमान बढना। 4.शरीर का तापमान अत्यधिक (105 फॉरेनहाईट या अधिक) हो जाना व परीना आना बन्द होना, मुंह का लाल हो जाना व त्वचा का सूखा होना। 5. अत्यधिक प्यास का लगना बेहोशी जैसी स्थिति का होना बेहोश हो जाना। 6. प्राथमिक उपचार या समुचित उपचार के अभाव मे मृत्यु भी संम्भव है। इसलिए डॉक्टर से परामर्श लेते रहें बचाव / उपाय- 1) प्रातः 10 बजे से सायं 6 बजे तक गर्मी से बचाने हेतु छायादार ठंडे स्थान पर रहने का प्रयास करें। 2) तेज धूप मे निकलना आवश्यक हो तो ताजा भोजन करके उचित मात्रा मे ठंडे जल का सेवन करके बाहर निकले अर्थात खाली पेट न निकलें और पानी साथ में हमेशा लेकर चलें। 3)थोड़े अन्तराल के पश्चात ठंडे पानी,शीतल पेय, छाछ , ताजा फलो का रस का सेवन करते रहें। 4) तेज धूप मे सूती फुल बांह के कपड़े, सिर पर कपड़ा रखकर चलें हो सके तो इन दिनों चश्में का प्रयोग बिना शौक के भी करना चाहिए। बाहर निकलने पर छाते का उपयोग करें। 5) प्रभावित रोगी को तुरन्त छायादार ठंडे स्थानो पर लिटा दे। 6) रोगी की त्वचा को गीले कपड़े से स्पन्ज करते रहे तथा रोगी के कपडो को ढीला कर दे। 7). रोगी होश मे हो तो उसे ठन्डा पेय पदार्थ देवे। 8) रोगी को तत्काल नजदीक के चिकित्सा संस्थान मे उपचार हेतु लेकर जायें एवं डॉक्टर से परामर्श लेते रहें। ■ भारती

DR..D.K.YADAV (MBBS)
MAIN MARKET (MADHEPURA)

Carbo - XT Drops Susp.
Ferrous Ascorbate100 mg + Folic Acid 1.5 mg + Vitamine B5 mcg Tab.

A Colic Drops.
Simethocone Emulsion, Dil Oil Fennel Oil

Siliplex Syp.
Silymarin, vitamin B Complex Calcuium & Lactic Acid Bacillus

Oflogyl-OZ Susp. (60 ml)
Ofloxacine 100 mg & Omindazole 125 mg

Acoba Syp.
Methylcobalamine, Lycopene, Multivitamine Multimineral & Antioxident

NOKSIRA
NOKSIRA Pharma Pvt.Ltd.
A Division of AriskonPharma

'मेघदूत' पर नाहक़ विवाद को हवा

अनंत विजय

समय- समय पर अनेक वादों और आदर्शों ने उम्मीदें दी थीं, जिन पर ठिठुरते हुए हमने अपने हाथों को सेंका था. आज उनके कोयले मद्धिम हो चले हैं, सिर्फ राख बची रही गई है, जो फूंक मारने से कभी दाईं ओर जाती है, कभी बाईं ओर. जिस दिशा में जाती है, हम उस तरफ भागते हुए कभी दक्षिणपंथी हो लेते हैं, कभी वामपंथी. लेकिन राख-राख है, उसके पीछे अधिक दूर तक नहीं भागा जा सकता. आखिर में अपने पास लौटना पड़ता है. हिंदी के मूर्धन्य लेखक निर्मल वर्मा की ये बातें कब कही गई थीं, उसका काल ठीक से याद नहीं पड़ता, लेकिन इस वक्त भी उनकी कही बातें एकदम सटीक मालूम पड़ती हैं. जब ठिठुरते हुए हाथ सेंके जा रहे थे तो उन कोयलों का रंग 'लाल' होता था, जो मद्धिम पड़ा और फिर अब जब राख बनकर हवा में उड़ रहा है तब कभी-कभार ऐसा होता है कि वो राख आपकी आंखों में पड़ जाए और आपको तकलीफ दे. आंखों में राख पड़ने से कोई नुकसान नहीं होता है, लेकिन वो कुछ समय के लिए काफी तकलीफदेह होता है. हाल में संगीत नाटक अकादमी में इस तरह की राख उड़ी थी, जो अकादमी के चेयरमैन शेखर सेन की आंखों में जा पड़ी और उसने उनको तात्कालिक रूप से तकलीफ पहुंचाई. दरअसल हुआ यह कि संगीत नाटक अकादमी ने इब्राहिम अल्काजी की याद में एक कार्यक्रम का आयोजन किया. जब कार्ड का ड्राफ्ट तैयार होकर आया तो उसको मीडिया में लीक कर दिया गया. लीक किए कार्ड से भ्रम फैला कि दिल्ली के रवीन्द्र भवन स्थित मेघदूत थिएटर का नाम बदलकर इब्राहिम अल्काजी के नाम पर किया जा रहा है. उस कार्ड के आधार पर सोशल मीडिया से लेकर अखबारों आदि में शोरगुल मचना शुरू हो गया. संगीत नाटक अकादमी के चेयरमैन शेखर सेन की घेराबंदी शुरू हो गई. शेखर सेन पर इस बात को लेकर हमले शुरू हो गए कि वो इब्राहिम अल्काजी को कालिदास से अहम मानते हैं. अजीब-अजीब से तर्क गढ़े जाने लगे. बगैर तथ्यों को जाने-समझे शोर मचाने की ये एक ऐसी मिसाल है, जिसपर कला-संस्कृति जगत से जुड़े लोगों को गंभीरता से विचार करना चाहिए. जब शोरगुल ज्यादा बढ़ा तो थिएटर से गहरे से जुड़ी वाणी त्रिपाठी ने विस्तार से लेख लिखकर भ्रम के इस जाले को साफ किया. वाणी ने अपने लेख में मेघदूत थिएटर की ऐतिहासिकता और इब्राहिम अल्काजी के थिएटर के योगदान को रेखांकित किया. वाणी ने इस बात को भी साफ किया कि रवीन्द्र भवन के परिसर के इस खुले रंगमंच का नामकरण अल्काजी ने ही किया था. वाणी त्रिपाठी के लेख के बाद इस पूरे विवाद पर से जाला हटना शुरू हो गया. फिर संगीत नाटक अकादमी की तरफ से भी इस पूरे विवाद पर चेयरमैन शेखर सेन ने अपनी सफाई पेश की. अगर हम समग्रता में विचार करें तो संगीत नाटक अकादमी से जुड़े

इस सरकार पर सांस्कृतिक संस्थाओं पर कब्जे के आरोप भी लग रहे हैं. वामपंथियों का अफवाह तंत्र इसको फैलाने के लिए बेहद सक्रिय है और किसी भी छोटे-बड़े मौके को हाथ से जाने नहीं देना चाहता है. इस स्थिति के बावजूद ज्यादातर काम वही हो रहे हैं, जो पहले से तय कर दिए गए हैं. हद तो तब हो जाती है, जब इन्हीं संस्थाओं में से एक के खर्चे पर विदेश जाकर एक इतिहासकार भारत के प्रधानमंत्री और मौजूदा सरकार को कठघरे में खड़ा कर देती है, अपनी ही देश की चुनी हुई सरकार को फासिस्ट आदि कह देती है. दरअसल यह तब होता है जब आपको अपने बौद्धिक सामर्थ्य पर भरोसा होता है, लेकिन जब आप विचारधारा वाले तर्क पेश करते हैं तो वो अंधविश्वास के रूप में सामने आते हैं.

पुराने लोगों ने विवाद उठाने की गरज से नए सिरे से काम करना शुरू किया है. उन्होंने गलत बातों को फैलाकर विवाद की आंधी खड़े करने की कोशिशें शुरू कर दी हैं, लेकिन पंखे की हवा से बनाई गई कृत्रिम आंधी का कोई असर नहीं होता है. फिर वामपंथ के अनुयायी लेखकों-कलाकारों- संस्कृतिकर्मियों का एक ऐसा संगठित तंत्र है, जहां किसी भी बात या तथ्य को अपनी सुविधा के हिसाब से फैलाकर जनमानस को प्रभावित या भ्रमित करने की कोशिश होती है. हालांकि कितनी सफलता मिलती है, इसका आकलन होना शेष है. वामपंथी गणेश जी को देशभर में दूध पिलाने की घटना को आरएसएस से जोड़कर उनके अफवाह तंत्र को निशाने पर लेते रहे हैं, लेकिन खुद वामपंथियों का अफवाह तंत्र बेहद मजबूत है. वे जब चाहें, जैसे चाहें, किसी को भी नाम दिला दें, बदनाम कर दें, पुरस्कार दिला दें या तिरस्कृत कर दें. अपनी इस ताकत के बूते पर वो परसेप्शन की लड़ाई भी लड़ते रहे हैं, अब भी लड़ रहे हैं. गंभीर विषयों की चाशनी में दरअसल वो अपनी विचारधारा का मार्ग प्रशस्त कर रहे होते हैं.

दरअसल साहित्य, कला और संस्कृति से जुड़ी अकादमियों और संस्थानों पर भले ही 2014 में सरकार बदलने के बाद से पुरानी व्यवस्था में बदलाव कर दिए गए हों, लेकिन यह बदलाव शीर्ष स्तर पर हुए हैं. चेयरमैन, अध्यक्ष आदि की भले ही नियुक्ति हो गई लेकिन उनको काम करने के लिए पर्याप्त कर्मचारी आदि नहीं दिए गए हैं. अभी तो इन संस्थानों के मुखिया को अपने कर्मचारियों के लिए ही मंत्रालय से संघर्ष करना पड़ रहा है, वो नया करने की सोचने की हालत में ही नहीं हैं. कलाकारों को इन संस्थाओं का अगुआ बनाकर अच्छी पहल की गई है लेकिन इन कलाकारों के साथ एक कुशल प्रशासक की नियुक्ति भी आवश्यक है. कुशल प्रशासक इस वजह से कि सालों से जड़ जमाए बैठी विचारधारा को अगर चुनौती देनी है तो पहले इस व्यवस्था को चुनौती देनी होगी. इसके अलावा जो लोग इन संस्थानों के कार्यकारी परिषद आदि में मनोनीत किए गए हैं वो पुरानी व्यवस्था को बदलना तो चाहते हैं, लेकिन कोई खतरा मोल नहीं लेना चाहते हैं. किसी तरह के विवाद में पड़े बगैर शांति से संस्था को चलाने की कोशिश हो रही है, जबकि सालों से जंग खाई व्यवस्था को एकबारगी तो जोरदार तरीके से हिलाने की जरूरत है. यहां इस बात की परवाह भी छोड़नी होगी कि विरोधी खेमे के लोग क्या कहेंगे? अगर विरोधियों की चिंता की गई तो बदलाव के नतीजों में संदेह है. दिल्ली के सांस्कृतिक गलियारों में इस बात की काफी चर्चा है कि नेशनल गैलरी ऑफ मॉडर्न आर्ट की पुरानी समिति ने 2020 तक के कार्यक्रमों को तय कर दिया है. अब अगर 2020 तक के संस्था का काम तय है, तो नेशनल गैलरी ऑफ मॉडर्न आर्ट, जो नए डायरेक्टर जनरल नियुक्त किए गए हैं, वो क्या करेंगे? उन उड़ती हुई राख को बैठकर उड़ाते रहेंगे, क्योंकि इनको करने के लिए बहुत कुछ तो है नहीं. यह सिर्फ नेशनल गैलरी ऑफ मॉडर्न आर्ट की स्थिति नहीं है. मंत्रालय में बैठे कुछ अधिकारी भी नई सरकार के नामित इन संस्थाओं के मुखिया की राह आसान बनाने की बजाय उसपर कांटे बिछाते रहते हैं. लालफीताशाही के फंदे में फंसाकर बदलाव को रोकना अफसरशाही के लिए काफी आसान होता भी है. लालफीताशाही से इन संस्थाओं को चलानेवाले इतने खफा हो गए थे कि उन्होंने दिल्ली में एक बैठक कर सामूहिक रूप से अपनी नाराजगी का इजहार किया था. उच्चस्तरीय दखल के बाद संस्कृति मंत्रालय में काम को गति मिली थी.

सवाल यह है कि इस सरकार पर सांस्कृतिक संस्थाओं पर कब्जे के आरोप भी लग रहे हैं. वामपंथियों का अफवाह तंत्र इसको फैलाने के लिए बेहद सक्रिय है और किसी भी छोटे-बड़े मौके को हाथ से जाने नहीं देना चाहता है. इस स्थिति के बावजूद ज्यादातर काम वही हो रहे हैं, जो पहले से तय कर दिए गए हैं. हद तो तब हो जाती है, जब इन्हीं संस्थाओं में से एक के खर्चे पर विदेश जाकर एक इतिहासकार भारत के प्रधानमंत्री और मौजूदा सरकार को कठघरे में खड़ा कर देती है, अपनी ही देश की चुनी हुई सरकार को फासिस्ट आदि कह देती है. दरअसल यह तब होता है जब आपको अपने बौद्धिक सामर्थ्य पर भरोसा होता है, लेकिन जब आप विचारधारा वाले तर्क पेश करते हैं तो वो अंधविश्वास के रूप में सामने आते हैं. विचारधारा की इस लड़ाई में वामपंथ के योद्धा हर तरह के हथियार से लैस हैं. पस्त जरूर हैं, लेकिन उनके अंदर इतनी ताकत तो शेष है कि वो किसी को भी शक के घेरे में खड़ा कर देने के लिए काफी हैं. वे किसी भी कार्यक्रम को विवादित कर सकते हैं. उनसे वैचारिक रूप से लड़ा जा सकता है, लेकिन वैचारिक लड़ाई में वो जिस तरह के गैर वैचारिक औजारों का इस्तेमाल करते हैं, उनसे निबटने के लिए यह आवश्यक है कि सामने वाले भी उसको भांपकर अपनी तैयारी करे. संगीत नाटक अकादमी में अगर वाणी त्रिपाठी ने मोर्चा नहीं संभाला होता तो उन्होंने अकादमी को बदनाम करने और शेखर सेन को लेकर एक भ्रम की स्थिति तो बना ही दी थी. उनको एक तरीके से परंपरा और विरासत विरोधी बताने की महिम शुरू हो चुकी थी. अब भी वक्त है कि इस वैचारिक लड़ाई में अपने सामने वाले की चालों को समझा जाए और उनको निष्क्रिय करने के लिए उसी तरह की कोशिशें भी की जाएं.■

anant.ibn@gmail.com

रामजन्मभूमि-बाबरी मस्जिद विवाद : समाधान का एक प्रयास

चंद्रशेखर के नेतृत्व में भारत की केंद्र सरकार सात माह से अधिक कार्य नहीं कर सकी परंतु इसी अवधि में इस सरकार ने रामजन्मभूमि-बाबरी मस्जिद विवाद को हल करने के गंभीर प्रयास किए. राजस्थान के वरिष्ठ भाजपा नेता भैरोंसिंह शेखावत और मैंने भी इस समस्या के समाधान में प्रयास किया. हालांकि बहुत से लोगों को इस प्रयास की जानकारी नहीं है, क्योंकि एक तो यह प्रयास पूर्णत: गैर-सरकारी था; दूसरे, अंतिम रूप में यह प्रयास व्यर्थ हो गया.

रामजन्मभूमि-बाबरी मस्जिद विवाद ब्रिटिश काल से चला आ रहा है. अयोध्या की बाबरी मस्जिद 1850 के दशक से एक विवादित इमारत है. कुछ हिंदू संगठनों का दावा है कि मस्जिद का निर्माण भगवान राम के जन्म-स्थल (जन्मभूमि) पर हुआ है और मुगलों द्वारा जन्मभूमि को ध्वस्त किया गया था. भारत की स्वतंत्रता के बाद भी समय-समय पर यह विषय उठता रहा. 1950 के दशक के प्रारंभ में इस ढांचे (इमारत) को न्यायालय द्वारा विवादित घोषित किया गया और इसके दरवाजे पर ताला लगा दिया गया. 1980 के दशक में इस विवाद ने एक राष्ट्रीय विवाद का रूप ले लिया.

एक मुसलमान तलाकशुदा महिला शाहबानो द्वारा गुजारे की राशि पाने के लिए सर्वोच्च न्यायालय में मुकदमा दायर किया गया, न्यायालय ने उसके पक्ष में फैसला दिया. अनेक मुसलमान संगठनों द्वारा इसे मुस्लिम पर्सनल लॉ में न्यायालय की दखलंदाजी कहा. इस विषय में राजीव गांधी सरकार ने मुस्लिम महिला (तलाकशुदा महिला के अधिकारों की रक्षा) बिल लोकसभा में प्रस्तुत किया. चूंकि सरकार का (कांग्रेस) लोकसभा में पूर्ण बहुमत था, इसलिए बिल सरलता से पारित हो गया.

चूंकि यह बिल सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को प्रभावित करता था और मुसलमानों के एक हिस्से की भावनाओं को संतुष्ट करता था, इसलिए हिंदू संगठनों ने इसे अल्पसंख्यकों का तुष्टीकरण कहा. इसके साथ ही एक नया मोड़ आया कि एक फरवरी, 1986 को फैजाबाद जिला न्यायालय ने अयोध्या के विवादित ढांचे के गेट का ताला खोलने का आदेश पारित कर दिया और कुछ घंटों के अंदर ही राजीव सरकार ने गेट खोलकर वहां पर राम मंदिर का शिलान्यास कार्यक्रम संपन्न करने की आज्ञा दे दी. इस विपरीत घटना को हिंदुओं का तुष्टीकरण कहा गया.

इन सब घटनाओं ने देश में धार्मिक ध्रुवीकरण को तेज किया. कुछ मुसलमानों ने मिलकर बाबरी मस्जिद एक्शन कमेटी (बी.एम.ए.सी) का गठन मस्जिद को बचाने के लिए किया. दूसरी तरफ कुछ हिंदुओं ने राममंदिर निर्माण के लिए राम जन्मभूमि न्यास का गठन किया. इसके बाद वी.पी. सिंह के नेतृत्व वाली सरकार के समय भाजपा के नेता लालकृष्ण अडवाणी ने अयोध्या में राम मंदिर निर्माण के पक्ष में जन गोलबंदी के लिए सोमनाथ से अयोध्या तक रथयात्रा निकाली. इस यात्रा को व्यापक समर्थन मिला. यह यात्रा अयोध्या तक जाने के उद्देश्य से निकाली गई थी, परंतु लालू प्रसाद यादव की सरकार ने उसे बिहार में ही रोक दिया. अडवाणी को गिरफ्तार कर लिया गया, परंतु यह मुद्दा वी.पी. सिंह की सरकार का पतन होने के बाद भी गरमाया रहा.

प्रधानमंत्री चंद्रशेखर ने पदभार संभालते ही, इस मसले पर जारी गतिरोध को तोड़ने की पहल की. भैरोंसिंह शेखावत को भाजपा में उदार हिंदू नेता के रूप में देखा जाता था. चंद्रशेखर और भैरोंसिंह शेखावत के बीच अच्छी मित्रता थी. प्रधानमंत्री ने इस मुद्दे के हल के लिए संभावित पहलकदमी की दृष्टि से मुझे और भैरोंसिंह शेखावत को दिल्ली बुलाया. उन्होंने शेखावत से बी.एम.ए.सी. के नेताओं के साथ एकांत में बात करने को कहा. मुझे भी रामजन्मभूमि न्यास के नेताओं से एकांत में बात करने को कहा गया. ऐसी योजना इसलिए बनाई गई, क्योंकि मुसलमान समुदाय के साथ शेखावत की कुछ एकता थी और रामजन्मभूमि न्यास का नेतृत्व आर.एस.एस. के मराठी मोरोपंत पिंगले कर रहे थे और मैं भी मराठी था.

हम लोगों ने तत्काल ही यह कार्य प्रारंभ कर दिया. शेखावत ने बी.एम.ए.सी. के नेताओं के साथ एक पर एक अनेक बार बातां की और मैंने पिंगले और उनके साथियों के साथ एकांत में कई मीटिंगें की. हम लोग एक साझा बिंदु (कॉमन प्वाइंट) पर पहुंच गए थे. इसके बाद दोनों तरफ के पदाधिकारियों के साथ कुछ संयुक्त मीटिंगें आयोजित हुईं. दोनों तरफ के लोगों को एक साथ बैठकर बातां के लिए तैयार करने में शेखावत ने महती भूमिका निभाई. मुझे ज्ञात हुआ कि इस प्रक्रिया में उन्होंने आर.एस.एस. वालों को कुछ कठोर शब्द भी कहे.

इस विवादित ढांचे के एक तरफ भगवान राम की मूर्ति रखकर हिंदू प्रार्थना और कीर्तन आदि करते हैं तथा दूसरी तरफ मुसलमान नमाज अता करते हैं. इस बात को ध्यान में रखते हुए इस सुझाव पर जोर दिया गया कि इस विवादित ढांचे को स्मारक के रूप में रखा जाए और हिंदुओं तथा मुसलमानों, दोनों को अलग-अलग मंदिर और मस्जिद निर्माण करने और अपने-अपने धार्मिक कार्यों के लिए भूमि आवंटन कर दी जाए. बी.एम.ए.सी. और राम जन्मभूमि न्यास, दोनों पक्षों के नेता इस सुझाव पर सहमत हो गए थे. अब इस बात को आगे बढ़ाना था, ताकि लंबी अवधि से उलझा यह मुद्दा हल हो सके. अफसोस, ऐसा नहीं हो सका. उस समय के राजनीतिक परिवर्तन ने वार्तालाप की इस प्रक्रिया को रोक दिया. मार्च, 1991 में कांग्रेस ने अपना समर्थन वापस ले लिया और चंद्रशेखर के नेतृत्व वाली सरकार का पतन हो गया. यदि चंद्रशेखर की सरकार छह माह या इससे कुछ अधिक दिनों तक बनी रहती, तो यह विवादित मुद्दा निश्चय ही सुलझा लिया जाता. इस सरकार के गिर जाने के बाद अवरुद्ध हुई प्रक्रिया को दुबारा प्रारंभ नहीं किया जा सका.

चंद्रशेखर के नेतृत्व वाली सरकार के गिर जाने के बाद 6 दिसंबर, 1992 को पी.वी. नरसिम्हाराव प्रधानमंत्री थे. सत्ता में हिंदू अंधभक्तों ने बाबरी मस्जिद का विवादित ढांचा ढहा दिया. मैं उस समय रक्षामंत्री था, एस.बी. चव्हाण गृहमंत्री थे और माधव गोडबोले गृहसचिव थे. भाजपा और आर.एस.एस. तथा इनके अनुषंगी संगठनों ने अयोध्या मुद्दे पर पूरे देश में हिंदू उन्माद फैलाना शुरू किया. उस समय उत्तर प्रदेश में कल्याण सिंह मुख्यमंत्री थे और प्रदेश में भाजपा की सरकार थी. इसलिए उनके लिए उन्मादी गतिविधियां फैलाना और आसान हो गया.

विश्व हिंदू परिषद (वी.एच.पी.) और इसके सहयोगी संगठन 6 दिसंबर की परिघटना की तैयारी में लगे थे, तब केंद्र सरकार अनेक चर्चाओं में व्यस्त थी. मैंने इस विषय पर कठोर कदम उठाने का सुझाव दिया. गोडबोले का भी यही मत था, परंतु प्रधामंत्री नरसिम्हाराव शक्ति प्रयोग के पक्ष में नहीं थे. मैंने सावधानी की दृष्टि से विवादित ढांचे पर सेना की टुकड़ियां तैनात करने का सुझाव रखा, परंतु इसे अस्वीकार कर दिया गया.

मेरा सुझाव अस्वीकार हो जाने के बाद मैंने सेना के गुप्तचर विभाग के अधिकारियों को 6 दिसंबर की सारी गतिविधियों की वीडियोग्राफी करने का आदेश दिया. इन अधिकारियों ने बाबरी मस्जिद को ध्वस्त करने में अनेक नेताओं के साथ कारसेवकों की गतिविधियों की फोटोग्राफी की.

बाबरी मस्जिद विवादित ढांचे के ध्वंस से एक नेता के रूप में नरसिम्हाराव की कमजोरियां सामने आ गईं. वह निश्चय ही इस तरह का विध्वंस नहीं चाहते थे, परंतु इस विध्वंस को रोकने के आवश्यक उपाय भी उन्होंने नहीं किए. मैंने भरसक उन्हें यह समझाने की कोशिश की कि विवादित ढांचे को गिराने के लिए कारसेवक किसी भी सीमा तक जा सकते हैं; परंतु वह इस बात से भयभीत थे कि यदि सेना ने गोली चलाई और कुछ लोग मर गए, तो यह हिंसा की आग पूरे देश में फैल जाएगी. उन्होंने दो और बातों का उल्लेख किया कि नेशनल इंटीग्रेशन काउंसिल की बैठक में राजमाता विजयराजे सिंधिया सहित भाजपा के वरिष्ठ नेताओं ने अभियान के दौरान कानून का उल्लंघन न करने का स्पष्ट आश्वासन दिया था और उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री कल्याण सिंह ने लिखित रूप से आश्वासन दिया था कि विवादित स्थल पर किसी भी अवांछनीय घटना को सरकार रोकेगी.

जब मैंने जोर देकर कहा कि इन नेताओं पर विश्वास करना खतरनाक है, तो नरसिम्हाराव ने कहा, मैं राजमाता के शब्दों पर पूर्ण विश्वास करता हूं. मैं जानता हूं, वह मुझे नीचा नहीं दिखाएंगी.

प्रधानमंत्री नरसिम्हाराव, एस.बी. चव्हाण और मैं 6 दिसंबर की शाम एक आपातकालीन बैठक में शामिल हुए. इस बैठक में गृहसचिव माधव गोडबोले ने विस्तार से बाबरी मस्जिद विवादित ढांचे को ध्वंस करने की घटना का विवरण पेश किया. गृह सचिव ने यह भी स्पष्ट किया कि भाजपा और अन्य हिंदूवादी संगठनों के नेताओं ने किस प्रकार इस घटना में भूमिका निभाई जिन पर प्रधानमंत्री ने पूरा विश्वास किया था. पूरी मीटिंग में प्रधानमंत्री केवल अचंभे में ही रहे.■

– शरद पवार की पुस्तक 'अपनी शर्तों पर' से.

क्रांतिकारी आंदोलन के अगुआ थे रासबिहारी

सन 1905 के बंगाल विभाजन के दौरान रासबिहारी बोस क्रांतिकारी गतिविधियों से पहली बार जुड़े. इस दौरान उन्होंने अरविंदो घोष और जतिन बनर्जी के साथ मिलकर बंगाल विभाजन के पीछे अंग्रेजी साम्राज्य की मंशा को उजागर करने का प्रयत्न किया. धीरे-धीरे उनका परिचय बंगाल के प्रमुख क्रांतिकारियों जैसे जतिन मुखर्जी की अगुआई वाले युगान्तर क्रान्तिकारी संगठन के अमरेन्द्र चटर्जी और अरविंदो घोष के राजनीतिक शिष्य रहे जतीन्द्रनाथ बनर्जी उर्फ निरालम्ब स्वामी से हुआ. निरालम्ब स्वामी के सम्पर्क में आने पर उनका परिचय संयुक्त प्रान्त (वर्तमान उत्तर प्रदेश) और पंजाब के प्रमुख आर्य समाजी क्रान्तिकारियों से हुआ.

जन्म- 26 मई, 1886
मृत्यु- 21 जनवरी, 1945

जन्मदिन पर विशेष

चौथी दुनिया ब्यूरो

रासबिहारी बोस एक भारतीय क्रांतिकारी थे जिन्होंने अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध गदर एवं आजाद हिन्द फौज के गठन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई. उन्होंने न सिर्फ देश के अन्दर बल्कि दूसरे देशों में भी रहकर अंग्रेज सरकार के विरुद्ध क्रान्तिकारी गतिविधियों का संचालन किया और ताउम्र भारत को स्वतन्त्रता दिलाने का प्रयास करते रहे. रासबिहारी बोस ने दिल्ली में भारत के तत्कालीन वायसराय लार्ड चार्ल्स हार्डिंग पर बम फेंकने की योजना बनाई, गदर की योजना बनाई, जापान जाकर इंडियन इंडिपेंडेंस लीग और बाद में आजाद हिंद फौज की स्थापना की. आजादी की लड़ाई में उनकी काफी महत्वपूर्ण भूमिका रही.

क्रान्तिकारी गतिविधियों में शुरू से दिलचस्पी रही

रासबिहारी बोस का जन्म 26 मई 1886 को बंगाल के बर्धमान जिले के सुबालदह गांव में हुआ था. इनकी प्रारंभिक शिक्षा चन्दननगर में हुई, जहां उनके पिता विनोद बिहारी बोस कार्यरत थे. आगे की शिक्षा उन्होंने चन्दननगर के डुप्लेक्स कॉलेज से ग्रहण की. चन्दननगर उन दिनों फ्रांसिसी कब्ज़े में था. अपने शिक्षक चारू चांद से उन्हें क्रांति की प्रेरणा मिली. उन्होंने बाद में चिकित्सा शास्त्र और इंजीनियरिंग की पढ़ाई फ्रांस और जर्मनी से की. रासबिहारी बाल्यकाल से ही देश की आजादी के बारे में सोचते थे और क्रान्तिकारी गतिविधियों में गहरी दिलचस्पी लेते थे. रासबिहारी ने देहरादून के वन अनुसंधान संस्थान में कुछ समय तक हेड क्लर्क के रूप में कार्य किया था.

सन 1905 के बंगाल विभाजन के दौरान रासबिहारी बोस क्रांतिकारी गतिविधियों से पहली बार जुड़े. इस दौरान उन्होंने अरविंदो घोष और जतिन बनर्जी के साथ मिलकर बंगाल विभाजन के पीछे अंग्रेजी साम्राज्य की मंशा को उजागर करने का प्रयत्न किया. धीरे-धीरे उनका परिचय बंगाल के प्रमुख क्रांतिकारियों जैसे जतिन मुखर्जी की अगुआई वाले युगान्तर क्रान्तिकारी संगठन के अमरेन्द्र चटर्जी और अरविंदो घोष के राजनीतिक शिष्य रहे जतीन्द्रनाथ बनर्जी उर्फ निरालम्ब स्वामी से हुआ. निरालम्ब स्वामी के सम्पर्क में आने पर उनका परिचय संयुक्त प्रान्त (वर्तमान उत्तर प्रदेश) और पंजाब के प्रमुख आर्य समाजी क्रान्तिकारियों से हुआ.

वायसराय हार्डिंग पर हुए हमले की निन्दा की!

दिसंबर 1911 में दिल्ली दरबार के बाद जब भारत के वायसराय लॉर्ड हार्डिंग की सवारी दिल्ली के चांदनी चौक में निकाली जा रही थ, तब हार्डिंग पर बम फेंका गया परन्तु वो बाल-बाल बच गए. युगांतर दल के सदस्य बसन्त कुमार विश्वास ने हार्डिंग की बग्घी पर बम फेंका था, लेकिन निशाना चूक गया. बम फेंकने की इस योजना में रासबिहारी की महत्वपूर्ण भूमिका थी. बसंत तो पकड़े गए पर बोस ब्रिटिश पुलिस से बचने के लिये रातों-रात रेलगाड़ी से देहरादून चले गए. वे अगले दिन कार्यालय में इस तरह काम करने लगे मानो कुछ हुआ ही नहीं हो. अंग्रेजी प्रशासन को उनपर कोई शक न हो इसलिए उन्होंने देहरादून के नागरिकों की एक सभा बुलाई और वायसराय हार्डिंग पर हुए हमले की निन्दा भी की. सन 1913 में बंगाल बाढ़ राहत कार्य के दौरान उनकी मुलाकात जतिन मुखर्जी से हुई, जिन्होंने उनमें नया जोश भर दिया जिसके बाद रासबिहारी बोस दोगुने उत्साह के साथ फिर से क्रान्तिकारी गतिविधियों के संचालन में जुट गए. उन्होंने भारत को आजादी दिलाने के लिए प्रथम विश्व युद्ध के दौरान गदर की योजना बनाई और फरवरी 1915 में अनेक भरोसेमंद क्रान्तिकारियों की सेना में घुसपैठ कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई. उनके क्रांतिकारी कार्यों का एक प्रमुख केंद्र वाराणसी रहा, जहां से उन्होंने गुप्त रूप से क्रांतिकारी आंदोलनों का संचालन किया.

जापान से लड़ी आजादी की लड़ाई

प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान युगांतर के कई नेताओं ने सशस्त्र क्रांति की योजना बनाई, जिसमें रासबिहारी बोस की प्रमुख भूमिका थी. इन क्रांतिकारियों ने सोचा था कि प्रथम विश्वयुद्ध के कारण अधिकतर सैनिक देश से बाहर गए हुए थे, अत: शेष बचे सैनिकों को आसानी से हराया जा सकता था. लेकिन दुर्भाग्य से उनका यह प्रयास भी असफल रहा और कई क्रान्तिकारियों को गिरफ्तार कर लिया गया. ऐसा माना जाता है कि सन 1857 की सशस्त्र क्रांति के बाद ब्रिटिश शासन को समाप्त करने का यह पहला व्यापक और विशाल क्रांतिकारी प्रयत्न था. इसके बाद ब्रिटिश पुलिस रासबिहारी बोस के पीछे लग गई, जिसके कारण वो भागकर जून 1915 में राजा पीएन टैगोर के छद्म नाम से जापान पहुंचे और वहां रहकर भारत की आजादी के लिए काम करने लगे. जापान में उन्होंने अपने जापानी क्रान्तिकारी मित्रों के साथ मिलकर देश की स्वतन्त्रता के लिए निरन्तर प्रयास किया. जापान में उन्होंने अंग्रेजी अध्यापन, लेखन और पत्रकारिता का कार्य किया. वहां पर उन्होंने न्यू एशिया नाम से एक समाचार-पत्र भी निकाला. उन्होंने जापानी भाषा भी सीख ली और इस भाषा में कुल 16 पुस्तकें लिखीं. उन्होंने हिन्दू धर्मग्रन्थ रामायण का भी अनुवाद जापानी भाषा में किया.

इंडियन इंडीपेंडेंस लीग की स्थापना

सन 1916 में रासबिहारी बोस ने प्रसिद्ध पैन एशियाई समर्थक सोमा आइजो और सोमा कोत्सुको की पुत्री से विवाह कर लिया और सन 1923 में जापानी नागरिकता ग्रहण कर ली. रासबिहारी बोस ने जापानी अधिकारियों को भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन और राष्ट्रवादियों के पक्ष में खड़ा करने और भारत की आजादी की लड़ाई में उनका सक्रिय समर्थन दिलाने में अहम भूमिका निभाई. उन्होंने मार्च 1942 में टोक्यो में इंडियन इंडीपेंडेंस लीग की स्थापना की और भारत की स्वाधीनता के लिए एक सेना बनाने का प्रस्ताव भी पेश किया.

जून 1942 में उन्होंने बैंकाक में इंडियन इंडीपेंडेंस लीग का दूसरा सम्मेलन बुलाया, जिसमें सुभाष चंद्र बोस को लीग में शामिल होने और उसका अध्यक्ष बनने के लिए आमन्त्रित किया गया. मलय और बर्मा के मोर्चे पर जापान ने कई भारतीय युद्धबन्दियों को पकड़ा था. इन युद्धबन्दियों को इंडियन इंडिपेंडेंस लीग में शामिल होने और इंडियन नेशनल आर्मी, आईएनए का सैनिक बनने के लिए प्रोत्साहित किया गया. आईएनए इंडियन नेशनल लीग की सैन्य शाखा के रूप में सितम्बर 1942 में गठित की गई. इसके बाद जापानी सैन्य कमान ने रास बिहारी बोस और जनरल मोहन सिंह को आईएनए के नेतृत्व से हटा दिया, लेकिन आईएनए का संगठनात्मक ढांचा बना रहा. बाद में सुभाष चंद्र बोस ने आजाद हिन्द फौज के नाम से आईएनए का पुनर्गठन किया. भारत के इस वीर सपूत का 21 जनवरी 1945 को निधन हो गया. जापानी सरकार ने उन्हें ऑर्डर ऑफ द राइजिंग सन के सम्मान से अलंकृत किया था.■

feedback@chauthiduniya.com

जल संग्राम

जानलेवा आर्सेनिक

आज ही अपने पीने के पानी की जांच करवाएं

एक जांच के मुताबिक गंगा बेसिन और हिमालय क्षेत्रों के गांवों में आर्सेनिक युक्त पानी सबसे अधिक पाया जाता है. यह पानी भू-जल में अधिक मिल रहा है. जिस चापाकल की गहराई 50 से 250 फुट तक है, उसमें आर्सेनिक की मात्रा ज्यादा होती है. 50 फुट से अधिक वोरिंग वाले चापाकल आर्सेनिक मुक्त हैं. बिहार के 38 में से 15 जिलों में पीने का पानी आर्सेनिक की मात्रा अधिक होने के कारण प्रदूषित है. आर्सेनिक युक्त पानी पीने से कैंसर रोग व चर्म रोग होने की सर्वाधिक आशंका रहती है. बिहार के 15 जिले, जो सर्वाधिक आर्सेनिक प्रभावित हैं, वे हैं बक्सर, भोजपुर, पटना, सारण, वैशाली, समस्तीपुर, बेगुसराय, दरभंगा, खगड़िया, कटिहार, पूर्णिया, किशनगंज, लखीसराय, मुंगेर और भागलपुर. एक रिपोर्ट के अनुसार गंगा के दोनों ओर बिहार के

15 जिलों के भूजल में आर्सेनिक के स्तर में खतरनाक बढ़ोतरी हुई है, जिसके कारण इस इलाके में रहने वाले लोगों के लिए कैंसर का खतरा बढ़ गया है. गंगा किनारे के दोनों तरफ़ के 57 विकासखण्डों के भूजल में आर्सेनिक की भारी मात्रा पाई गई है. आर्सेनिक नामक धीमे ज़हर से लीवर, किडनी के कैंसर और गैंगरीन जैसी बीमारियों का खतरा बढ़ जाता है. समस्तीपुर के एक गांव हराइल छापर में भूजल के एक नमूने में आर्सेनिक की मात्रा 2100 पीपीबी पाई गई, जो कि सर्वाधिक है. गौरतलब है कि विश्व स्वास्थ्य संगठन ने पेयजल में 10 पीपीबी की मानक मात्रा तय की है, जबकि भारत सरकार के दिशानिर्देशों के अनुसार अधिकतम सुरक्षित मात्रा 50 पीपीबी मानी जाती है.

आर्सेनिक क्या है

आर्सेनिक एक गंधहीन और स्वादहीन उपधातु है, जो ज़मीन की सतह के नीचे प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है. आर्सेनिक और इसके यौगिक रवेदार, पाउडर और एमोरफस या कांच जैसी अवस्था में पाए जाते हैं. यह सामान्यतः चट्टान, मिट्टी, पानी और वायु में काफी मात्रा में पाया जाता है. यह धरती की तह का प्रचुर मात्रा में पाए जाना वाला 26वां तत्व है.

ख़तरनाक आर्सेनिक

अगर मात्रा को आधार माना जाए तो आर्सेनाइट को आर्सेनिक का सबसे जहरीला स्वरूप माना जाता है. आर्सेनिक मानव शरीर के ड्रिश जहरीला असर पैदा करता है, आर्सेनिक-पॉइजनिंग को चिकित्सकीय भाषा में आर्सेनिकोसिस कहते हैं. यह शरीर में उपलब्ध आवश्यक एंजाइम्स पर नकारात्मक प्रभाव छोड़ता है और जिसकी वजह से शरीर के बहुत से अंग काम करना बंद कर देते हैं. अंत में इसकी वजह से रोगी की मौत हो जाती है. पीने के पानी में मौजूद आर्सेनिक आंतों द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है. वहां से रक्तवाहिनियां इन्हें विभिन्न अंगों तक पहुंचाती हैं. शरीर में अवशोषित आर्सेनिक की मात्रा का पता नाखून और बाल के नमूनों से लगाया जाता है. सामान्यतः मानव शरीर आर्सेनिक के बहुत कम मात्रा का आदी होता है, जो मूत्र के जरिए बाहर निकल जाता है. अगर अधिक मात्रा में आर्सेनिक का सेवन होने लगे तो यह शरीर के अंदर ही रह जाता है. चूंकि यह वातावरण में प्राकृतिक रूप से मौजूद है, इसके अलावा कुछ कृषि और औद्योगिक गतिविधियों के कारण भी ऐसा हो जाता है. यह भूजल अथवा सतही जल में घुल जाता है और हमारे पेयजल में पहुंच जाता है.

भारत में पश्चिम बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, झारखण्ड, छत्तीसगढ़, असम, नागालैंड, मणिपुर, त्रिपुरा, अरुणाचल प्रदेश आदि राज्यों में आर्सेनिक का प्रभाव पाया गया है. ज्यादा प्रभावित राज्य पश्चिम बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश और झारखण्ड हैं.

आर्सेनिक का कोई अलग स्वाद, रंग या गंध नहीं होता. सही तरीके से जमा करने और संरक्षित करने के बाद, पानी के नमूने को मान्यता प्राप्त एनालिटिकल लैब में जांच कराकर यह पता लगाया जा सकता है कि आपका ट्यूबवेल आर्सेनिक दूषित है या नहीं? इसलिए, हैण्डपम्प का पानी पीना बन्द कर देना चाहिए व केवल साफ किया गया पानी ही पीना चाहिए.■

जल संरक्षण

जल संरक्षण के कुछ आसान तरीक़े

- ब्रश करते समय नल खुला रखने से 15 लीटर पानी बेकार हो सकता है.
- एक बूंद प्रति सेकेंड की दर से टपकने वाले नलों से हर वर्ष 10,000 लीटर पानी व्यर्थ हो सकता है.
- बागवानी में इस्तेमाल किए गए जल का 50 फीसदी, भाप से उड़ने या जरूरत से ज्यादा पानी देने के कारण बर्बाद हो जाता है. होज या स्प्रिंकलर की बजाय बूंद-बूंद से होने वाली सिंचाई प्रणाली लगाएं. पौधों के आस-पास थोड़ी सड़ी-गली सब्जियां बिखरा दें, इससे नमी बनी रहती है और पानी, समय तथा पैसे की बचत होती है.
- पानी की जरूरत को कम करने के लिए, औद्योगिक क्षेत्र, कारखानों आदि में आधुनिक तकनीक को प्रयोग में लेना चाहिए.
- छतों से वर्षा जल का संचय करें. यह पीने, कपड़े धोने, बागवानी आदि सभी कार्यों के लिए उत्तम है. इसके लिए गांव, शहरों में भवन निर्माण सम्बन्धी नियमों में वर्षा जल संचयन को अनिवार्य किया जाना चाहिए तथा लोगों को वर्षा जल संचय हेतु प्रोत्साहित किए जाने वाले उपाय ढूंढे जाने चाहिए.
- छतों पर लगी टंकियों से पानी गिरकर बर्बाद होना एक आम दृश्य है. इसे रोकने के लिए सबसे सरल उपाय है कि आप अपनी टंकी को एक वाटर ओवरफ्लो अलार्म से जोड़ दें.
- अमूमन फ्लश से ज़रूरत से अधिक पानी बहता है, इसलिए अगर आप उसमें 1 लीटर की बोतल में बालू-कंकड़ आदि भर के डाल देते हैं तो हर एक फ्लश पर आप 1 लिटर पानी बचा सकते हैं.
- जब भी आप गिलास में पानी लें तो पूरा भर के लेने की बजाए, उतना ही लें जितना पीना है.
- आरओ मशीन या एसी से निकलने वाले बेकार पानी का उपयोग करें.
- कई बार लोग सब्जियों और फलों को नल के नीचे धोते हैं, अगर इसकी जगह आप किसी बड़े भगोने या बर्तन में पानी भर कर सब्जियां धोएंगे तो पानी भी कम लगेगा और वो ठीक से साफ़ भी हो पाएंगी.
- वाश बेसिन के नीचे भी पानी कण्ट्रोल करने के लिए एक टोटी लगी होती है, अक्सर वो पूरी खुली होती है. अगर आप उसे थोड़ा सा घुमा देंगे तो पानी का फ्लो अपने आप कुछ कम हो जाएगा और काफी पानी बर्बाद होने से बच जाएगा.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback@chauthiduniya.com

वरुण धवन का सचिन के साथ ख़ास कनेक्शन

सचिन तेंदुलकर और बॉलीवुड अभिनेता वरुण धवन के बीच एक दिलचस्प कॉमन फैक्टर का पता चला है और यह है दोनों का एक ही दिन बर्थडे होना. जी हां, वरुण धवन और सचिन का बर्थडे एक ही दिन 24 अप्रैल को आता है. वरुण भी क्रिकेट के बहुत बड़े फैन हैं. ऐसे में क्रिकेट के भगवान के साथ अपना बर्थडे शेयर करने वाले वरुण धवन खुद को बहुत ही सम्मानित महसूस करते हैं और कहते हैं कि क्रिकेट मेरी जिंदगी का एक बहुत ही अहम हिस्सा है और मैं नियमित रूप से क्रिकेट खेलता हूं.

कई पहलुओं को उजागर करेगी

सचिन
अ बिलियन ड्रीम्स

क्रिकेट का यह भगवान, मास्टर ब्लास्टर सचिन तेंदुलकर अब अपनी लाइफ की दूसरी पारी बॉलीवुड में खेलने जा रहे हैं और उनकी इस फिल्म का नाम होगा *सचिन : अ बिलियन ड्रीम्स*. फिल्म का ट्रेलर पहले ही सोशल मीडिया पर धमाल मचा चुका है, जिसे लेकर उनके फैंस काफी ख़ुश हैं. वे फिल्म को लेकर काफी उत्साहित भी हैं. ख़ुद सचिन ने स्वीकार किया है कि इस फिल्म में उनके जीवन से जुड़ी तमाम ऐसी बातें होंगी, जिसके बारे में लोग कम जानते हैं.

प्रवीण कुमार

कई साल तक अपनी बेहतरीन बल्लेबाजी से करोड़ों दिलों पर अगर किसी ने राज किया है, तो वे हैं सिर्फ और सिर्फ सचिन तेंदुलकर. कई बेहतरीन रिकॉर्ड आज भी उनके नाम से कायम हैं. क्रिकेट की दुनिया में सचिन तेंदुलकर एक ऐसे नाम हैं, जिन्हें कई बल्लेबाज़ अपना आदर्श मानते हैं और समय-समय पर उनसे कुछ ना कुछ ख़ास सीखते रहते हैं. आपको जानकर हैरानी होगी कि सचिन तेंदुलकर ने 18 दिसंबर 1989 को अपना पहला एकदिवसीय अंतरराष्ट्रीय मैच पाकिस्तान के ख़िलाफ खेला और अपना आख़िरी मैच भी पाकिस्तान के खिलाफ 18 मार्च 2012 में खेला था.

साल 2013 में मुंबई में वेस्टइंडीज के ख़िलाफ सचिन ने अपना आख़िरी टेस्ट मैच खेला था, जिसके बाद उन्होंने क्रिकेट को अलविदा कह दिया था. मास्टर के इस निर्णय पर पूरे भारतवासियों की आंखों में आंसू आ गए थे. लोगों को लगा कि वह अब सचिन की एक झलक पाने के लिए तरस जाएंगे. लेकिन भगवान को कुछ और ही मंजूर था. जी हां, क्रिकेट का ये भगवान, मास्टर ब्लास्टर सचिन तेंदुलकर अब अपनी लाइफ की दूसरी पारी बॉलीवुड में खेलने जा रहे हैं और उनकी इस फिल्म का नाम होगा *सचिन : अ बिलियन ड्रीम्स*.

फिल्म का ट्रेलर पहले ही सोशल मीडिया पर धमाल कर चुका है, जिसे लेकर उनके फैंस में काफी खुशी है. वे फिल्म को लेकर काफी उत्साहित भी हैं. ख़ुद सचिन ने स्वीकार किया है कि इस फिल्म में उनके जीवन से जुड़ी वे तमाम बातें होंगी, जिसे अब तक लोग नहीं जानते हैं.

फिल्म के क्लाइमेक्स को लेकर निर्देशक और सचिन दोनों के मन में कई तरह की आशंकाएं थीं. लेकिन निर्देशक

ने निर्णय लिया कि फिल्म का अंत सचिन के संन्यास पर दिए गए उनकी वास्तविक स्पीच से ही किया जाएगा. करीबी सूत्रों के अनुसार पहले निर्देशक और सचिन के मन में यह बात आई थी कि फिल्म का अंत भारत के 2011 में जीते गए वर्ल्ड कप से किया जाए, जिसमें सचिन को पूरी टीम ने कंधे पर बिठा कर स्टेडियम के राउंड लगाए थे. लेकिन निर्देशक और सचिन की पत्नी अंजलि ने यह आइडिया दिया कि फिल्म का अंत सचिन की स्पीच के साथ ख़त्म होना चाहिए, क्योंकि वह सचिन की जिंदगी का सबसे अहम क्षण था.

बताते चलें कि इस फिल्म में सचिन से जुड़े कई दिलचस्प पहलू दर्शक देख पाएंगे, जिन्हें लोग कम ही जानते हैं. फिल्म 26 मई को रिलीज़ होगी. आइए जानते हैं फिल्म और सचिन से जुड़ी कुछ ख़ास रोचक जानकारियां.

पहली सेंचुरी बनाने के बाद सचिन तेंदुलकर को डराया गया था

फिल्म *सचिन: अ बिलियन ड्रीम्स* के ट्रेलर लॉन्च के दौरान सचिन तेंदुलकर को मीडिया के सामने आकर ठीक वैसा ही लगा, मानो यह उनकी पहली प्रेस कॉन्फ्रेंस है. इस मौके पर ख़ुद मास्टर ब्लास्टर सचिन तेंदुलकर मौजूद थे.

सचिन ने बताया कि *1990 में जब मैंने अपनी पहली इंटरनेशनल सेंचुरी बनाई थी, तब मैंने पहली बार प्रेस कॉन्फ्रेंस की थी. उस वक्त मुझे जैसा लगा था, ठीक वैसा ही आज मुझे लग रहा है. उस वक्त मुझे प्रेस कॉन्फ्रेंस के बारे में कुछ पता नहीं था, तो मैं ड्रेसिंग रूम में सभी क्रिकेटर से पूछ रहा था कि वहां जाकर क्या करना है? क्या पूछेंगे? बहुत से क्रिकेटरों ने डराया भी कि बहुत सारे सवाल पूछेंगे. ऐसा ही अनुभव आज मुझे हो रहा है.*

सचिन ने आगे कहा, *यह मेरे लिए बहुत ख़ास दिन है. ट्रेलर को देखने के बाद इस तरह की प्रतिक्रिया के लिए आप सभी का धन्यवाद. पिछले 24 साल से मैं भारत के लिए खेलता रहा और जिस तरह से आप लोग मेरे लिए चिल्ला रहे थे और सपोर्ट कर रहे थे, वह शानदार था. यह फिल्म सिर्फ मेरे क्रिकेट खेलने को लेकर नहीं है, बल्कि मेरे जीवन के क्षणों से भी जुड़ी हुई है. जो मुझे आप सभी को दिखाना है.*

बस कंडक्टर और लिटिल सचिन

सचिन तेंदुलकर की लाइफ पर आधारित डॉक्यु-ड्रामा सचिनः ए बिलियन ड्रीम्स पर सचिन ने अपने बचपन का एक मज़ेदार किस्सा बताते हुए कहा कि *एक दिन घर में सभी ने प्लानिंग की कि फिल्म मां देखने जाएंगे. हम एक बस में बैठकर फ़िल्म देखने गए. मुझे याद है, मैं काफी कम उम्र का था. बस में कंडक्टर ने मुझसे पूछा कि कहां की टिकट चाहिए, तो मैंने तुरंत कह दिया मां फ़िल्म की.*

यह सुन कर कंडक्टर हंसने लगा. सचिन ने यह भी बताया कि जिस दिन उन्होंने वर्ल्ड कप जीता था, उस दिन उनकी बेटी ताज कोलाबा से घर जा रही थी, लेकिन पूरे मुंबई में ऐसा जश्न मन रहा था कि सभी हैरान थे. सब लोग रोड पर मस्ती कर रहे थे. खुशियां मना रहे थे. मेरी बेटी वो पल कभी भूल नहीं पाती है और मैं भी कभी नहीं भूल सकता. उसी दिन के लिए मैं अपना सपना पूरा करने की कोशिश करता था कि पूरी दुनिया के लिए कुछ कर पाऊं.

इसके अलावा सचिन ने कहा, मैंने कपिल देव को वर्ल्ड कप उठाए हुए देखा था. मुझे बहुत ख़ुशी मिली थी. उस दिन से सपना देखा था कि मैं वर्ल्ड कप हाथ में ले पाऊं. फिल्म के ट्रेलर में भी आप कुछ इसी तरह का एक शॉट देख सकते हैं, जब कपिल देव को वर्ल्ड कप उठाते हुए सचिन टीवी पर देख रहे थे.■

सचिन तेंदुलकर के साथ शाहरुख ख़ान का ख़ास कनेक्शन

किंग खान यानि शाहरुख ख़ान ने सचिन को उनकी आने वाली इस फ़िल्म के लिए बेस्ट विशेज दी है और सचिन के साथ अपने स्पेशल कनेक्शन को भी शेयर किया है. क्रिकेट और बॉलीवुड के बीच कनेक्शन हमेशा से रहा है और आईपीएल इसका सबसे बेहतरीन उदाहरण है. शाहरुख और सचिन का यह कनेक्शन आपने पहले कभी नहीं सुना होगा. किंग ख़ान का मानना है कि जब सचिन अच्छा खेलते थे, तब उनका काम भी अच्छा होता था, जब सचिन हारते थे तो वो भी फेल होते थे. बिलियन लोगों की तरह वो भी सचिन के रूप में अपनी गाइडिंग लाइट को मिस करते हैं.

क्यों है ना ख़ास कनेक्शन? वैसे, इस ख़ास ट्विट का जवाब सचिन ने भी बड़े ख़ास तरीके से दिया. सचिन ने लिखा, ज़िन्दगी में हार ना होती तो कोई कभी जीतता नहीं और कुछ सीखता भी नहीं, बिलियन लोगों की तरह मुझे भी आपके ये शब्द छू गए हैं. वाह!

रजनीकांत ने दी कामयाबी की शुभकामनाएं

अपनी फ़िल्मों के जरिए अपराजय और सर्वशक्तिमान महानायक का ख़िताब पा चुके रजनीकांत ने सचिन तेंदुलकर को उनकी डॉक्यूमेंट्री फिल्म के लिए विश किया है. वैसे इंडस्ट्री में कम ही लोग हैं, जिन पर रजनी सर की मेहरबानी या निगहबानी होती है. गॉड ऑफ़ क्रिकेट कहे जाने वाले सचिन उनमें से एक हैं. रजनीकांत ने ट्विटर विश करते हुए लिखा है- प्रिय सचिन तेंदुलकर, सचिन... ए बिलियन ड्रीम्स के लिए मेरी शुभकामनाएं. भगवान भला करे.

बता दें कि, सचिन की इस फ़िल्म में सचिन के साथ वीरेन्द्र सहवाग भी दिखाई देंगे. यह फ़िल्म 26 मई 2017 को रिलीज़ होगी. इसे इंटरनेशनल फिल्ममेकर जेम्स एरस्किन ने डायरेक्ट किया है और फिल्म में संगीत ए.आर. रहमान ने दिया है. फिल्म का बजट लगभग 35 करोड़ तक बताया जा रहा है. इसके अलावा इस डॉक्यूमेंट्री फिल्म में सचिन की शुरुआती लाइफ़ और क्रिकेट के ज़रिए उनके भगवान बनने तक के सफ़र को बख़ूबी दिखाया जाएगा.■

feedback@chauthiduniya.com